CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंततिलका

1890

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्ग संख्या.................. प्राप्ति-संख्या......................

ग्रन्थ-कार्ड

श्री गणेश वर्णी दि० जैन (शोध) संस्थान

ग्रन्थागार

नरिया, वाराणसी-५

ग्रन्थ नाम वसंत तिलका (पौराणिक नाटक)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंत तिलका

(पौराणिक नाटक)

fिo 1086

नाटक—लेखिका
रूपवती "किरण"

1878

सन्मति—प्रकाशन—मंदिर
किरण—ज्योति
६६२, राइट टाउन जबलपुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक
सन्मति-प्रकाशन-मंदिर,
किरण-ज्योति,
६६२, राइट टाउन,
जबलपुर (म. प्र.)

★

(स्वत्वाधिकार)
प्रथम संस्करण
मूल्य २ रुपया

★

मुद्रक—
साधना प्रिंटिंग प्रेस,
मिलौनीगंज जबलपुर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिंहावलोकन

[डा० हीरालाल जैन, संस्कृत–पाली–प्राकृत विभागाध्यक्ष,
जबलपुर विश्वविद्यालय]

भारतीय साहित्य में कथाओं का बाहुल्य है और इन कथाओं की अपनी कुछ विशेषतायें हैं। एक तो उनकी धारा बहुत प्राचीन है। वैदिककाल में भी उनका अस्तित्व पाया जाता है। तथा भगवान बुद्ध तो अपने उपदेशों को दृष्टान्तों और आख्यानों द्वारा ही प्रभावशाली बनाया करते थे। इस कारण समस्त पाली साहित्य कथाओं से भरा पड़ा है। इस साहित्य का एक अंग जातक कहलाता है, क्योंकि उसमें भगवान बुद्ध के पूर्व जन्म जन्मांतरों के कथानक हैं। यहाँ हमें लघु कथा के समस्त अंगों और तत्वों का स्वरूप विधवित् विकसित हुआ दिखाई देता है। इसके पश्चात् पंचतंत्र हितोपदेश, कथा सरित्सागर आदि अनेक संस्कृत रचनाओं में नाना भाँति की कथायें दृष्टिगोचर होती हैं, जिसमें मानव जीवन एवं मानव स्वभाव की विचित्रता भले प्रकार प्रतिबिंबित पाई जाती है, और सभी में कोई न कोई जीवनोपयोगी नैतिक उपदेश स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रूप से इंगित किया गया दिखाई देता है। पुराणों में भी आख्यानों का बड़ा भंडार है जो धार्मिक भावनाओं व क्रिया कलापों के स्वरूप और फल को स्पष्ट करने के लिये वर्णित की गई है। जैन साहित्य में भी इन सभी कथाओं की विपुलता है—पुराणों में भी और स्वतंत्र कथाकोषों में भी। इनमें से अनेक कथाओं को समय समय पर नाटकों का स्वरूप देकर कलाकारों ने उन्हें और अधिक प्रभावशाली बनाने का प्रयत्न किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन प्राचीन कथाओं में चारुदत्त की कथाओं का महत्व-पूर्ण स्थान है। कथा के रूप में हमें यह प्राकृत जैन ग्रन्थ वसुदेव हिण्डी में तथा संस्कृत हरिवंश पुराण में प्राप्त होती है। इस कथा को सर्वप्रथम नाटक रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय भारत के अति प्राचीन और सुप्रसिद्ध नाटककार भास को है। जिन्होंने अपने चार अंकात्मक चारुदत्त नामक नाटक में इसे उपस्थित किया है। भास (अनु० द्वितीय शती) का कथानक इस प्रकार है :—

चारुदत्त सेठ धनहीन हो जाने पर भी अपने रूप एवं दया दाक्षिण्य आदि गुणों के लिये प्रसिद्ध हैं। इन ही गुणों से नगर की विख्यात गणिका वसन्तसेना उन पर मुग्ध है और वह उनका प्रेम प्राप्त करने के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिये तैयार है। उधर राजा का साला शकार वसन्तसेना को अपने वश में करना चाहता है। एक बार रात्रि के समय शकार ने उसका पीछा किया। उससे बचने के लिये वसन्तसेना ने चारुदत्त के घर में आश्रय लिया और सुरक्षा के लिये अपने समस्त बहुमूल्य आभूषण चारुदत्त को सौंप दिये। चारुदत्त ने उन्हें अपने गृह निवासी मित्र मैत्रेय के सुपुर्द किया। रात्रि को सज्जलक नामक चोर ने उन्हें चुरा लिया और उनके द्वारा उसने वसन्त सेना से अपनी प्रेयसी मदनिका को दासत्व से मुक्त कराना चाहा। उधर चारुदत्त ने वसन्तसेना के चोरी गये आभूषणों के बदले में अपनी पत्नी का रत्नजटित हार उसे भेजा। वसन्तसेना ने उन आभूषणों से अपनी दासी को सजा बजा कर सज्जलक के साथ विदा कर दिया एवं चारुदत्त के भेजे हार को उसे लौटाने के लिये चेटी के साथ घर से प्रस्थान किया। बस यहीं चार अंक का नाटक अकस्मात समाप्त हो जाता है।

(५)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारुदत्त का यही कथानक शूद्रककृत मृच्छकटिक नाटक में भी कुछ हेर फेर के साथ आया है। किन्तु इस नाटक के प्रथम चार अंकों में आये उक्त कथानक से आगे दशम अंक तक कुछ और भी वृत्तान्त पाया जाता है। जो इस प्रकार है:—

चारुदत्त और वसन्तसेना का विचार उद्यान-क्रीड़ा का हुआ। किन्तु भ्रमवश वसन्तसेना शकार के रथ में बैठ गई और उसके उद्यान में पहुँचकर शकार के चंगुल में फँस गई। उसके प्रेम को ठुकरा देने के कारण शकार ने क्रुद्ध होकर उसका गला घोंट दिया, और उसे मरा जानकर छोड़ा। उसी समय वहाँ एक श्रमण साधु का आगमन हुआ और उसे जीवित पाकर वह अपने विहार में ले गया। उधर शकार ने जाकर न्यायालय में यह प्रतिवेदन किया कि वसन्तसेना को मेरे उद्यान में चारुदत्त ने मार डाला। वसन्तसेना की माता ने भी जाकर प्रकट किया कि उसकी पुत्री चारुदत्त के घर गई थी तब से फिर नहीं लौटी। अन्य भी प्रमाण ऐसे उपस्थित हुये कि न्यायालय में चारुदत्त ही घातक सिद्ध हुआ और उसे शूली पर चढ़ाने का दण्ड दिया गया। किन्तु ठीक समय पर उस भिक्षु ने वसन्तसेना को ला उपस्थित किया।

इसी समय जिस आर्यक की रक्षा चारुदत्त ने की थी उसी ने अपने शत्रु पालक राजा को मारकर उज्जयिनी का राज्य प्राप्त कर लिया और उसने प्रत्युपकार रूप से चारुदत्त को राज्य में सर्वश्रेष्ठ पद प्रदान किया, वसन्तसेना उसकी सच्ची अर्धांगिनी बनाई गई और जिन जिन अन्य पुरुषों ने चारुदत्त या वसन्तसेना की उनके दुर्दिनों में सहायता की थी उन सभी को उनके उपयुक्त उच्चपदों पर प्रतिष्ठित किया गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाटकों में इस कथा-वस्तु की चारुदत्त के उस चरित्र से तुलना करने योग्य है जो जैन ग्रन्थों में पाया जाता है। प्राकृत वसुदेव—हिण्डी और जिनसेनकृत संस्कृत हरिवंश पुराण में वर्णित चारुदत्त का जीवन चरित्र इस प्रकार है :—

अंगदेश की चंपा नगरी में बड़े धनाढ्य सेठ भानुदत्त रहते थे। उनकी सुभद्रा नामक पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया जो चारु नामक मुनि के वरदान तथा स्वकीय रूप सौन्दर्य एवं गुणों के कारण चारुदत्त नाम से प्रसिद्ध हुआ। तरुण होने पर उसका विवाह अपने मामा—मामी सर्वार्थ और सुमित्रा की पुत्री मित्रवती से हुआ। किन्तु चारुदत्त विद्याव्यसनी होने से अपनी पत्नी के प्रति उदासीन रहता था अतएव उसकी माता ने उसका संपर्क उसके काका रुद्रदत्त से करा दिया जो काम-शास्त्र—निपुण तथा वैश्य-वर्ग के संपर्क में रहते थे। रुद्रदत्त ने अपने भतीजे का परिचय नगर की प्रसिद्ध वेश्या कलिंगसेना की पुत्री वसन्तसेना से कराया दोनों में प्रीति बढ़ गई और चारुदत्त उसी की संगति में रहकर अपने धन का अपव्यय करने लगा। एक दिन ऐसा आया कि कलिंगसेना ने उसे निर्धन जान वसन्तसेना की बिना अनुमति के अचेत अवस्था में घर से बाहर कर दिया। वह घर गया तो देखा कि पिताजी विरक्त होकर मुनि हो गये और माता एवं पत्नी घर में दीन-हीन अवस्था का दुख भोग रही हैं। अतएव चारुदत्त अपनी स्त्री के बचे खुचे आभूषणों को लेकर व्यापार के लिये निकल पड़ा। वह नाना देशों और द्वीपों में घूमा-फिरा खूब हानि लाभ उठाया तथा अनेक बार समुद्र में नौका डूबने की विपत्तियाँ झेलीं। अंत में कुंभकंटक नामक द्वीप में कर्कोटक पर्वत पर उसे एक ऐसे मुनि-राज के दर्शन हुये जिनका मुनि होने से पूर्व

(8)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारुदत्त ने एक बड़ा उपकार किया था। उन्होंने उसे पहिचान कर उसी समय वहाँ आये अपने विद्याधर पुत्रों से उसका परिचय करा दिया। उन भाइयों ने विपुल धन-वैभव के साथ उसके घर पहुँचा दिया। साथ ही अपनी बहिन गंधर्वसेना को भी उसके साथ इसलिये भेजा कि एक भविष्यवाणी के अनुसार उसका विवाह चारुदत्त के घर पर गांधर्व-विद्या-प्रवीण यदुवंशी राजकुमार वसुदेव के साथ होगा। उसकी ख्याति सुनकर वसुदेव ने गांधर्व-विद्या का अभ्यास कर चारुदत्त के घर आकर गंधर्वसेना से विवाह किया और उन्हीं के प्रश्न के उत्तर में चारुदत्त ने अपना जीवन वृत्तान्त उन्हें सुनाया।

यही वह कथानक है जिसके आधार पर श्रीमती रूपवती "किरण" ने अपने प्रस्तुत नाटक की कथा वस्तु का आयोजन किया है। पाठक स्वयँ देख सकेंगे कि इसमें नाटक—लेखिका की कलात्मक मौलिकता और चातुरी कहाँ तक प्रतिबिम्बित हुई है। मुझे आशा और विश्वास है कि इस नाटक के द्वारा उसके पाठक या दर्शक मानवीय प्रकृति के उतार चढ़ाव का अच्छा परिचय पा सकेंगे और उपदेश भी ग्रहण कर सकेंगे।

संस्कृत, पाली, प्राकृत विभागाध्यक्ष,
जबलपुर विश्वविद्यालय
जबलपुर

डा. ही. ला. जैन
२१–७–६५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तावना

नाटकों के संबंध में अधिक कुछ नहीं कह सकती। लगभग एक युग से मैंने नाटक लिखना प्रारंभ किया है। इसके पूर्व मैंने बालक बालिकाओं द्वारा कई नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किये हैं; जो कि दर्शकों ने बड़े चाव से देखे हैं एवं मुक्तकंठ से प्रशंसा भी की है। इसी संदर्भ में मुझे नाटक लिखने की प्रेरणा श्रीयुत नरेशचंदजी गढ़वाल से प्राप्त हुई। प्रेरणा—स्रोत अनवरत प्रवाहित होने का श्रेय निश्चय ही आदरणीय भाई पंडित प्रकाशचंदजी शास्त्री हितैषी" देहली को है; जिन्होंने नाटकों को अपने मासिक पत्र सन्मति-सन्देश में स्थान दे निरंतर प्रोत्साहित कर सचमुच ही मुझे किन्हीं अंशों में नाटक-लेखिका बना नाटककारों की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया है।

इसके अतिरिक्त मेरे पिताजी श्रीयुत बाबू लक्ष्मीचंदजी जैनी रिटायर्ड सुरिन्टेन्डेन्ट को–आपरेटिव्ह सी. पी. एन्ड बरार' नागपुर ने अपने समय में अभिनय करने में बड़ी ख्याति प्राप्त की थी अब तो वृद्धावस्था ने उन्हें इस ओर से विरक्त कर दिया है। यों वे बहुत विनोदी स्वभाव के हैं। अभी भी उनकी वार्त्तायें आकर्षक और मनोरंजक हुआ करती हैं। यद्यपि उस समय फिल्मों का जन्म हो चुका था; तथापि नाटकों की लोकप्रियता कम नहीं हुई थी। नाटक थियेटरों में खेले जाते थे। ऐसे नाटकों का प्रचलन था जो रात्रि को ६–१० बजे से प्रारंभ हो समस्त रात्रि व्यतीत कर उषाकाल में समाप्त होते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थे। जिस नाटक के अभिनीत करने में जितना अधिक समय लगता था; उसे उतनी ही अधिक प्रशंसा प्राप्त होती थी। समय की अवधि ही उसकी श्रेष्ठता की प्रतिपादक थी। बचपन से पूज्य बाबूजी का अभिनय देखते देखते मन में कहीं नाटक बीज रूप हो जम गया होगा; समय पाकर कदाचित् वही अब प्रस्फुटित हो नाटक लिखने की प्रेरणा प्रदान करने लगा है। जो भी हो, संप्रति नाटक लिखना मुझे प्रियकर हो गया है।

इसके पूर्व मैं केवल कुछ तुकबंदी ही करती थी अथवा यदा कदा सामाजिक समस्याओं पर कभी कुछ लिख बैठी हूँ। लेख संग्रह 'जैन दर्शन में वर्त्तमान विज्ञान व गृहस्थाश्रम' नाम से सन् ५८ में सूरत से प्रकाशित कर श्रीयुत मूलचंद किसनदासजी कापड़िया ने मासिक पत्र 'दिगंबर जैन' के ग्राहकों को भेंट—स्वरूप वितरित किया था। पश्चात् कोई पुस्तक प्रकाशित न हो सकी। अपने मित्रवर्ग की निरंतर प्रेरणा तथा नाटकों में रुचि रखनेवाले पाठकों के अत्यधिक आग्रह से यह 'वसंततिलका' नाटक प्रकाशित हो रहा है।

यह नाटक जैन-पौराणिक कथानक 'चारुदत्त—चरित्र' के आधार पर लिखा गया है। जो सन्मतिसंदेश में 'पतन की पराकाष्ठा' नाम से क्रमशः प्रकाशित हो चुका है। किन्तु इस पुस्तक में अंतिम दृश्य काटकर नाटक की दिशा परिवर्त्तित कर कला की दृष्टि से दूसरा ही मोड़ दे कुछ और दृश्य जोड़कर उसे परिवर्द्धित भी किया है। यह प्रेरणा मुझे सिंहावलोकन—लेखक श्रीयुत डा० हीरालालजी तथा श्रीयुत डा. एच. एस. मिश्रा से प्राप्त हुई। अधिकांशतः नाटककार नाटकों में पुरुषपात्र को उठाने में ही सर्वस्व लगा देते हैं, पर मैं स्वयं नारी हूँ अतः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नारी-पात्र के चरित्र-चित्रण में स्वभावतः मेरी विशेष रुचि है। पात्रों के माध्यम से मैं अपनी बात पाठकों के सम्मुख रख सकी हूँ।

जीवन घटना-प्रधान है। नाटकों का आधार भी यही है अथवा पौराणिक, ऐतिहासिक आख्यानों पर भी नाटक लिखे जाते हैं। नाटककार उन घटनाओं से तादात्म्य संबंध जोड़कर वहाँ उपस्थित व्यक्तियों का मनोविश्लेषण कर यथार्थ मानवता की रूपरेखा पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। अपनी प्रतिभा व लेखनी द्वारा अनावश्यक बातों को काट छाँट कर जीवन की घटना विशेष को उभारकर पाठकों के मर्मस्थल तक पहुँचना चाहता है। पात्रों के परस्पर वार्त्तालाप में भी तथ्य नीहित होता है जो बुराइयों को दूर कर स्वस्थ मस्तिष्क व स्वस्थ समाज का निर्माण करने में सक्षम है।

प्रस्तुत नाटक में मित्रवती, वसंततिलका दोनों का चरित्र ऊँचा उठा है। मित्रवती विवाह के पश्चात् पतिदर्शन से भी वंचित है। उसकी तीव्र आकांक्षा चारुदत्त से साक्षात्कार करने की है, पर नारी-सुलभ-लज्जा उसमें बाधक है। बड़ी कठिनाई से विवश हो वह किन्हीं अंशों में लाज त्यागकर चारुदत्त के कक्ष में जाती है। साहस कर कुछ कहने का उपक्रम अवश्य करती है पर चारुदत्त की सरलता के कारण उसके मन की बात स्पष्ट नहीं हो पाती। इसके विपरीत चारुदत्त की धारणा भी बदल जाती है और वह मित्रवती को अपने समान ही धार्मिक वृत्ति का समझ बैठता है। मित्रवती व्यथित हो भयंकर वेदना की ज्वाला हृदय में दबाये अतृप्त प्यास लिये चुपचाप लौट आती है। उससे सदा सदा के लिये पति सुख छिन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाता है। अंत में भी जब चारुदत्त विदेश से लौटकर आते हैं; तब ऐसे कार्य कारण जुड़ते हैं कि उसे तुरंत श्रमणपथ अंगीकार करने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं सूझता। एवं तीनों प्रमुखपात्र संसारिक सुखों को जलांजलि दे उसी पथ का अनुसरण करते हैं। इसप्रकार हम देखते हैं कि मित्रवती अपने जीवन में ऐहिक सुखों का किंचित् भी स्वाद नहीं ले सकी।

दूसरी ओर पाठकगण वसंततिलका पर दृष्टिपात करें तो पायेंगे कि वेश्याकुल में उत्पन्न होकर उसने कुल-विरोधी पातिव्रत धर्मपर तनिक भी आँच नहीं आने दी। प्रत्युत उसकी रक्षा में असीम सुख वैभव को तृण की भाँति क्षण भर में त्याग कर उस कोमलांगी ने घोर कष्ट सहे। चारुदत्त के निरंतर सहवास में वैभव के बीच रहकर बारह वर्ष की लंबी अवधि में प्रारंभिक चंद वर्षों को छोड़ शेष समय कठिन ब्रह्मचर्य धारण कर मित्रवती के दुःख में समान दुखी हो आध्यात्मिक अध्ययन कर मनन-चिन्तन कर व्यतीत किया। अंत में भी अपनी सहिष्णुता और असीम धैर्य का परिचय देकर नारी की अपूर्व क्षमता प्रदर्शित की। अपने अपने स्थान पर दोनों नारियाँ श्रेष्ठतम प्रमाणित हुई हैं।

नाटक में आडम्बर-पूर्ण मंच-निर्देश देना भी मुझे युक्तिसंगत तथा रुचिकर प्रतीत नहीं होता। रंगमंच की साजसज्जा में कठिनाई न हो, वह सरलता से अभिनीत किया जा सके, इसलिये यह ध्यान में रखकर ऐसे दृश्य उपस्थित किये गये हैं जिनके लिये साधन-सामग्री सहज ही उपलब्ध हो सके, रंगमंच की व्यवस्था ही नाटक को जटिल न बना दे। मेरा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मत भी यही है कि इस व्यवस्था के लिये निर्देशक स्वतंत्र हैं। वे स्वयं सुविधानुसार, मनोनुकूल मंच का निर्माण करें। तात्पर्य यह कि अभिनय को दृष्टिगत रखकर नाटक अधिक से अधिक सुविधाजनक बनाया है। साथ ही साहित्य-प्रेमियों के लिये भी यथासाध्य सामग्री जुटाने का प्रयत्न कर स्तर को ऊँचा उठया है।

यद्यपि साहित्यिक-जगत में यह नाटक उपादेय न बन सका हो, पर है यह आपकी ही वस्तु। नाटक आपके हाथों में है, कहाँ तक वह सफल हो आपको प्रभावित कर सका है? यह सब आप पाठकों, दर्शकों, पर निर्भर है। आप ही इसके निर्णायक हैं। पाठकों के पुराने और सुपरिचित प्रेम के विश्वास के आधार पर मैं अपना यह नाटक साहित्य-जगत में सविनय प्रस्तुत करती हूँ।

पुस्तक के निर्माण. मुद्रण, प्रकाशन आदि में उपर्युक्त समस्त सज्जनों व प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से अन्य जिन सज्जनों ने सहायता दी है उन सबकी मैं विशेष आभारी हूँ।

मुखपृष्ठ का चित्र, जिसने पुस्तक के कलेवर को सजाया सँवारा है; उसके चित्रकार सुप्रसिद्ध सितार—वादक श्रीयुत सुन्दरलालजी सोनी हैं; उन्होंने अपना अमूल्य समय दे चित्र का निर्माण किया। उनके इस अपरिहार्य सहयोग को भी भुलाया नहीं जा सकता। उनके प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ।

"किरण"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

❁ समर्पण ❁

जिन्हें नाटकों में गहरी अभिरुचि है,

उन पूज्य पिताश्री

के कर कमलों में

सादर

समर्पित

"किरण"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पात्र परिचय

पुरुष पात्र—

भानुदत्त—उज्जैनी के नगर श्रेष्ठी चारुदत्त के पिता.

रुद्रदत्त—भानुदत्त के लघुभ्राता.

चारुदत्त—भानुदत्त के पुत्र.

सोमभद्र—भानुदत्त का विश्वासपात्र सेवक.

चक्रधर, शशांक } विदेशी नवयुवक परस्पर मित्र.

प्रियदत्त—श्रीपुर के श्रेष्ठी एवं भानुदत्त के अनन्य मित्र

पुंडरीक—प्रियदत्त के पुत्र.

नारी पात्र —

देवलदेवी—भानुदत्त की पत्नी चारुदत्त की माँ.

सुमित्रादेवी—मित्रवती की माँ, देवलदेवी की भाभी, पश्चात् समधिन.

मित्रवती—चारुदत्त की पत्नी.

वसंतमाला—उज्जैनी की विश्रुत वारांगना.

वसंततिलका—वसंतमाला की पुत्री, पश्चात् चारुदत्त की प्रेयसी.

मंगला—देवलदेवी के महल की दासी.

सुनयना—वसंततिलका की दासी.

शुभा—वसंतमाला की दासी.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम अंक

प्रथम दृश्य

श्रेष्ठि भानुदत्त का महल
श्रेष्ठिपुत्र चारुदत्त का कक्ष
समय-रात्रि द्वितीय पहर

कक्ष सादगी से परिपूर्ण है। एक ओर पलंग पर शैया बिछी हुई है। दूसरी ओर काष्ठासन पर बैठे हुये चारुदत्त किसी धार्मिक ग्रन्थ का अध्ययन करने में दत्तचित्त हैं। उनकी माता देवलदेवी पुत्र से उसके विवाह के विषय में परामर्श करने आती हैं। मुखाकृति खिली सी प्रतीत होती है।

देवलदेवी—(चारुदत्त को पढ़ने में तल्लीन देखकर,स्वत:) जब देखो तब पढ़ता ही रहता है। (विचारमग्न हो)……इस लड़के को कैसे समझाऊँ। मेरी बुद्धि ही काम नहीं करती। आधी जिन्दगी माँ बनने की साध में बिता दी। पुत्रोत्पत्ति की अभिलाषा से मैंने क्या नहीं किया? औषधियाँ खाईं। जन्त्र-मन्त्र के फेर में पड़ी रही। देवी देवताओं की मनौतियाँ मानीं; तब कहीं इस लड़के का मुख देखा। मेरा मन कब से वधू का चन्द्रमुख देखने को तरस रहा है, पर (गहरी साँस लेते हुये) यह है कि ग्रन्थों का कीट बना बैठा है। (चारुदत्त के पास आकर कुछ देर मौनपूर्वक खड़ी रहती हैं। वे अध्ययन में इतने तन्मय रहते हैं कि माँ के आने का उन्हें आभास नहीं होता)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवल देवी—चारु ! रात्रि कितनी बीत चुकी, कुछ इसका भी ध्यान है ?

चारुदत्त—(चौंककर) अरे माँ ! आप कब आईं ? बैठिये न।

देवल देवी—मुझे तो नींद आ रही है पुत्र सोना चाहूँगी।

चारुदत्त—(विनयपूर्वक) तब यहाँ आने का कष्ट क्यों किया माँ ! विश्राम करतीं।

देवल देवी—(निराशा के स्वर में) विश्राम ? विश्राम कहाँ है मेरे भाग्य में ?

चारुदत्त—(ग्रन्थ को बन्द कर एक ओर रखते हुये) भला ऐसी भी क्या बात है माँ ? बैठ तो जायें आप। (हाथ पकड़ कर पास ही बैठा लेते हैं) क्या कोई शारीरिक पीड़ा हो आई है ? आप शयन करें। हस्त-पाद मर्दन मैं किये देता हूँ। कहिये तो कुशल चिकित्सक को बुला लाऊँ ?

देवल देवी—मानसिक व्यथा इससे सन्तुष्टि न पा सकेगी चारु ! (गहरा निःश्वास छोड़ती है)।

चारुदत्त—तब फिर बतलाने का कष्ट करें कि वह कौन सी व्यथा आपके मानस को कुरेद रही है। मैं अवश्य उसे दूर करने का प्रयत्न करूँगा। (माँ को मौन देखकर) मौन क्यों हैं माँ ! क्या कुछ गोपनीय विषय है ?

देवल देवी—गोपनीय तो कुछ भी नहीं।

चारुदत्त—तो क्या मैं अपनी माँ की वेदना जानने का अधिकारी नहीं ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवल देवी—वत्स जानने के ही नहीं; अपितु उस वेदना का निराकरण एकमात्र तुम्हीं कर सकते हो।

चारुदत्त—तब शीघ्र ही बतलाने की कृपा करें। अवश्यमेव दूर करूँगा।

देवल देवी—वचन दे रहे हो चारु! फिर………

चारुदत्त—(बात काट कर) फिर क्या, कुछ संदेह है? आप निःशंक हो कहें। कहने भर की देर है माँ!

देवल देवी—(क्षणेक ठहरकर) वत्स! अब मैं अपने आँगन को नूपुर की झंकार से झंकृत होते देखना चाहती हूँ। अकेलापन मुझे काटने दौड़ता है। कहो, मेरी मनोकामना कब पूर्ण करोगे?

चारुदत्त—(हँसकर) यह बात है? आपकी गंभीरता देखकर मैं कोई आकस्मिक विपत्ति का ही अनुमान कर रहा था। 'खोदा पहाड़, निकली चुहिया'।

देवल देवी—(गंभीरता से) इस तरह हँसी में बात टालने का असफल प्रयास मत करो चारु!

चारुदत्त—कहाँ व्यर्थ की बात ले बैठीं माँ! ऐसी जल्दी भी क्या है?

देवल देवी—(कृत्रिम रोष से) जल्दी भी क्या है? अरे जहाँ देखो वहाँ यही चर्चा होती है कि चारुदत्त अभी तक क्वाँरा ही है। मुझे अच्छा नहीं लगता।

चारुदत्त—(हँसते हुये) लोक चर्चा का विषय तो कुछ होना ही चाहिये। आप इस पर ध्यान न दिया करें। उपयुक्त समय आने पर ही कार्य होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवल देवी—तुम बालक नहीं रहे चारु ! तुम्हारे बराबर के लड़के दो दो बच्चों के बाप हो गये और तुम उपयुक्त समय का बहाना ही कर रहे हो।

चारुदत्त—पर मेरा अध्ययन तो समाप्त होने दें।

देवल देवी—चारु ! मैंने भी दुनिया देखी है। मुझे अधिक न बनाओ।

चारुदत्त—(गंभीरता से) माँ !

देवल देवी—(ध्यान न देते हुये) मैं कुछ नहीं सुनना चाहूँगी। शास्त्रीय अध्ययन न कभी समाप्त हुआ है न होगा। न ही इससे गार्हस्थ जीवन में बाधा आती है; बल्कि अध्ययन की परिपक्वता की कसौटी है गृहस्थ धर्म।

चारुदत्त—(बाहर आकाश की ओर देखकर) माँ ! अर्ध रात्रि हो रही है। आप निद्रा लें अन्यथा जी भारी लगेगा।

देवल देवी—सोती तो रोज हूँ, पर आज अंतिम निर्णय जानना चाहती हूँ। तुम हो कि बातों में बहलाये जा रहे हो।

चारुदत्त—(मुस्कराकर) विचार का समय तो दो माँ !

देवल देवी—यह वाक्य तुम्हारे मुँह से बराबर सुनती आ रही हूँ। मुझे इसमें कोई आकर्षण नहीं।

चारुदत्त—प्रतीत होता है आज माताजी मुझ पर अत्यंत रुष्ट हैं। क्या मेरा अनुमान सत्य है माँ !

देवल देवी—(गंभीरता पूर्वक) बस बस बहुत हो चुका चारु ! बचपन की नादानी अब शोभा नहीं देती। तुम्हारे अध्ययन के कारण कई रिश्ते अमान्य कर दिये। परन्तु अब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुम्हारी उदासी मुझे असह्य हो रही है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'। मित्रवती को तो तुमने देखा ही है। उसकी शिक्षा व स्वभाव से भी तुम पूर्णतः परिचित हो। मैं उसे अपनी पुत्रवधू के रूप में देखना चाहती हूँ। केवल तुम्हारी सम्मति की अपेक्षा है। कहो, क्या कहते हो? (चारुदत्त मौन हैं) 'मौनं सम्मति लक्षणं' के अनुसार क्या मैं तुम्हारी स्वीकृति समझूँ?

चारुदत्त—(विवश होकर मंद स्वर में) माँ की बात टालकर दुराग्रह करने में मैं असमर्थ हूँ।

देवल देवी—(विह्वल हो प्रसन्नता से) तूने मेरी बात रख ली वत्स! मुझे अपार प्रसन्नता हुई। बस, अब कल बंधु सिद्धार्थ के घर जाकर शीघ्रातिशीघ्र इस संबंध में स्वीकृति प्राप्त करूँगी। अब सो जाओ चारु! मैं भी शयन करूँगी। (प्रस्थान)

चारुदत्त—(स्वगत) माँ की बात कब तक टालता। आज तो जैसे वे हाँ कहलवाने ही आई थीं। उनकी गंभीर मुद्रा के आगे कुछ कहने का साहस ही नहीं हुआ। गार्हस्थिक मर्यादाओं का निर्वाह करने में मैं स्वयँ को नितान्त असमर्थ पाता हूँ। अज्ञात आशंका से मेरा हृदय प्रकंपित सा हुआ जा रहा है। जाने भविष्य में क्या होगा?

पटाक्षेप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृश्य द्वितीय

समय-दिन का द्वितीय प्रहर

श्रेष्ठि सिद्धार्थ का भवन

सुमित्रा देवी अपने कक्ष में बैठी हैं। कक्ष सजा हुआ है। प्राकृतिक दृश्यों के मनोरम चित्र दीवार पर अंकित हैं। एक ओर आसंदियाँ रखी हुई हैं। दूसरी ओर जमीन पर सुखासन बिछा हुआ है। फर्श का रंगीन कालीन कमरे की सुन्दरता को द्विगुणित कर रहा है। सुमित्रा देवी भोजन से निवृत्त हो ताम्बूल आदि खा रही हैं। रजत पानदान एक ओर रखकर वे आराम करना चाहती हैं कि इतने में उनकी ननद देवल देवी आ जाती हैं। सुमित्रा उठकर उनका स्वागत करती हैं।

सुमित्रा देवी—(हँसकर) आइयें ननद जी! बहुत दिनों में आने का कष्ट किया। (हाथ पकड़ कर बैठाती हैं) कहिये सब कुशल मंगल है। आज बहुत दिनों में दर्शन हो रहे हैं।

देवल देवी—(मुस्कुराकर) ऐसा तो कहोगी ही। स्वयँ तो आती नहीं, मुझे ताने देती हो।

सुमित्रा देवी—मेरा अभिप्राय नहीं समझीं आप।

देवल देवी—समझा दो न!

सुमित्रा देवी—सरल सी बात है। अरे ननदोई जी से आज्ञा प्राप्त की होगी, तब न ननद जी आ सकीं हैं।

देवल देवी—तुम भाभी बड़ी वैसी हो। सीधी बात करना जैसे तुम जानती ही नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुमित्रादेवी—(विनोद पूर्वक) मैं क्यों जानने लगी। यह कला ननदोई जी जानते हैं।

देवलदेवी—(हंसते हुये) चुप भी रहो। मुझे ऐसी बातें अच्छी नहीं लगतीं।

सुमित्रादेवी—क्यों वृद्धावस्था आ गई क्या ?

देवलदेवी—अरे, मैंने सोचा, भाभी को आने का अवकाश मिलता ही नहीं। अतः कुशलक्षेम पूछने स्वयं ही चली आई। तुम्हें कष्ट न देकर अच्छा ही किया न ?

सुमित्रादेवी—सो तो है ही। बड़ी हो न ! सारी बातों का ध्यान आप ही को रखना पड़ेगा।

देवलदेवी—अच्छा जी, तो यह बात है ? (विनोदपूर्वक) ननद-भावज में छोटे बड़े का प्रश्न नहीं उठता, समझीं ?

सुमित्रादेवी—समझने का प्रयत्न करूँगी। (हँसती हैं)।

देवलदेवी- मित्रवती कहाँ है भाभी ! बहुत दिनों से देखा नहीं।

सुमित्रादेवी—उसकी सहेली वसुमती का फलदान जो है, वहीं निमंत्रण में गई है। पर्याप्त समय हो चुका। आती ही होगी।

देवल देवी—भाभी ! मित्रवती का विवाह कब करोगी ?

सुमित्रादेवी—जब आपकी अनुमति हो।

देवलदेवी- हुँ...ह.... तुमने तो मेरे पैर मेरे ही गले में फँसा दिये। मुझे ब्याह के मोदक खाना है। सीधे से बताओ कहीं निश्चित हुआ है क्या ?

सुमित्रा देवी—ऐसे पूछ रही हो, जैसे इस घर से आपका कोई संबंध ही न हो। अरे आपकी सम्मति के बिना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस घर का एक पत्ता भी नहीं खड़कता। आप जैसी आज्ञा देंगी, वैसा करने को हम सदैव प्रस्तुत हैं। आप ही बताइये कोई वर ?

देवल देवी—वर ! मैं बताऊँ ? अभी तक क्या तुम सो रही थीं। ऐसी बन रही हो मानो कोई चिंता ही न हो।

सुमित्रा देवी—(किंचित् गंभीर हो) सचमुच अभी तक चिन्ता की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती थी। पर अब चिंता ने अवश्य पकड़ लिया है।

देवल देवी—ऐसा क्यों ? क्या कारण आ गया ?

सुमित्रा देवी—बातों ही बातों में उस दिन त्रिशला चाची कह उठीं कि तुम्हें क्या चिन्ता ? चारुदत्त को व्याह कर कभी भी कन्या के हाथ पीले कर दोगी।

देवल देवी—तुमने तो भाभी मेरे मुँह की बात छीन ली। मैं आज इसीलिये आई हूँ। यह संबंध सुखद और मंगलकारी होगा। तुम्हारा क्या विचार है ?

सुमित्रा देवी—यद्यपि न कहने की धृष्टता तो नहीं कर सकती तथापि एक बाधा आती है।

देवल देवी—(घबराकर) वह क्या ?

सुमित्रा देवी—चारुदत्त ठहरे विद्याव्यसनी। भला उन्हें शादी-व्याह से क्या मतलब ? विवाह के लिये उन्हें विवश करना मैं उपयुक्त नहीं समझती। इसी कारण तुम्हारे भैया वर की खोज में बाहर जाना चाह रहे हैं।

देवल देवी—नहीं भाभी, मित्रा को कहीं दूर न ब्याहो। 'बगल में लड़का, गाँव में टेर' चारुदत्त कुँआरा है। अतएव

(2·5)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अध्ययन में लीन रहता है। जहाँ आँखें चार हुई कि परिवर्तन हो जायगा।

सुमित्रा देवी—ये बात मानती हूं। अधिकाँशतः व्याह के पश्चात् तरुण गृहस्थी में रत हो जाते हैं। फिर भी आप उनसे पूछ लें कि वे क्या चाहते हैं। एक ही कन्या है। हठात् उनके गले नहीं बाँधना चाहती।

देवल देवी—सो तो मैं भी नहीं चाहती कि कन्या का जीवन दुखी हो। तुम्हारी तरह मेरा भी एक ही पुत्र है। अभी तक विवाह के नाम पर ना करता रहता था, पर आज उसकी स्वीकारता लेकर आई हूँ।

सुमित्रा देवी—(हर्षित हो) सच ! तव हमें कोई आपत्ति नहीं।

देवल देवी—तुम्हारी ओर से बात पक्की समझूँ ?

सुमित्रा देवी—अवश्य ! आप इसमें किसी प्रकार की शंका न करें।

देवल देवी—भैया से पूछ लेतीं तो अच्छा था। तनिक बुलवा लो न भाभी !

सुमित्रा देवी—आपके भैया को आज अवकाश नहीं है। कल कुछ विदेशी वणिक आये हैं उत्तम वहुमूल्य रत्नों का क्रय करने। वे उसी कार्य में उलझे होंगे। यों उनकी ओर से आप निश्चिन्त रहें। चारुदत्त को दामाद बनाने का विचार उनका भी था; परन्तु उदास मनोवृत्ति देखकर मन हटा लिया था। आपका प्रस्ताव सुनकर उन्हें अति प्रसन्नता होगी।

देवल देवी—फिर भी""(मित्रवती का प्रवेश)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रवती—नमस्कार बुआ जी ! (चरण छूती है)

देवल देवी—(मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद देती हैं) सदैव प्रसन्न रहो पुत्री ! (गले का मंगलसूत्र उतार कर पहिना देती हैं)।

मित्रवती—(हँसकर) यह क्या बुआ जी !

सुमित्रा देवी—ननद जी ! मंगलसूत्र अभी से क्यों पहिना दिया ? अभ्यागत की तरह बाजे—गाजे से आकर पहिनातीं।

देवल देवी—(प्रसन्नता से विह्वल हो) तब तो नौलखा चन्द्र हार लेकर आऊँगी अपनी वधू के लिये। रीतें हाथ बहू को थोड़े ही देखा जाता है। (मित्रवती लजाकर भाग जाती है। उलाहने के मीठे स्वर में) तुम बड़ी खराब हो भाभी ! बात स्पष्ट कर मेरी बहू को तुरन्त भगा दिया। जरा भी नहीं बैठने पाई।

सुमित्रा देवी—अब तो जीवन भर आपके ही साथ रहेगी। हम लोगों का तो अब अधिकार ही समाप्त हुआ। (आँखें सजल हो उठती हैं)।

देवल देवी—फिर क्या मित्रा यहाँ नहीं आयेगी ? पागल !

सुमित्रा देवी—आने को तो आयेगी पर ब्याह के पश्चात् पुत्रियाँ पराई हो जाती हैं।

देवल देवी—लो और सुनो ! क्या कोई दूसरे अनजाने घर में जा रही मित्रवती। चारु भी तो तुम्हारा अपना ही है। ....अच्छा अब मैं जाऊँगी। भैया से कहना कि विवाह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का शुभ मुहूर्त्त शोधन करवा कर शीघ्रातिशीघ्र संवाद भिजवा दें। (खड़ी हो जाती हैं)

सुमित्रा देवी—(खड़ी होकर) बिना मुंह मीठा किये समधन जी चलीं कैसे ? क्या नया रिश्ता सूखे-सूखे ही हो जायगा। भीतर चलें, बिना भोजन किये भागना असंभव है। (हाथ पकड़कर ले जाने का उपक्रम करती हैं)।

देवल देवी—विलंब चाहे हो जाये, पर भोग लगाना अनिवार्य है। चलो, नई समधन की बात मानना ही पड़ेगी।

(दोनों का हँसते हुये प्रस्थान)

पटाक्षेप

तृतीय दृश्य

समय—रात्रि का प्रथम प्रहर

श्रेष्ठि भानुदत्त का महल

विवाह के वाद्य बज रहे हैं। शहनाई की मधुर ध्वनि से श्रेष्ठि भानुदत्त का महल मुखरित हो रहा है। द्वार पर वर-वधू खड़े हैं। द्वाराचार की रस्म अदाई हुई। देवल देवी ने दोनों की आरती उतारी। चारुदत्त तथा मित्रवती ने बारी-बारी से सास-श्वसुर के चरण छुये एवं 'चिरंजीव रहो' 'सदैव प्रसन्न रहो' के प्यार भरे मधुर शुभाशीर्वाद प्राप्त किये। तत्पश्चात् महल में प्रवेश किया। सुहागिन नारियाँ मंगल गान व नृत्य कर रही हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गीत

मंगल वेला आई रे मंगल वेला आई।
जगमग जगमग दीप प्रजाले, बाज रही शहनाई रे ॥ मंगल ॥
चंद्रमुखी सी पुत्रवधू है, मानो चंद्र लजाई रे ॥ मंगल ॥
हर्षित हैं सब पुरजन परिजन, देते भेंट बधाई रे ॥ मंगल ॥
दान दियो सुखमन से पितु ने, याचकगण मनभाई रे ॥ मंगल ॥
मिल सब गाओ नृत्य करो सखि! मनमें साध समाई रे ॥ मंगल ॥
मंगल वेला आई रे मंगल वेला आई ॥

देवल देवी सब आगंतुक महिलाओं को भर भर अंजुलि मेवे बाँट रही हैं। धीरे धीरे सब चली जाती हैं दासी मंगला रह जाती है।

देवल देवी-मंगला! मित्रवती को उसके कक्ष तक पहुँचा आ।
मंगला-जो आज्ञा! चलें बहूरानी। (दोनों का जाना)
(मित्रवती के कक्ष में आकर)
मंगला—मुझे आज्ञा दें बहूरानी!
मित्रवती-तुम कहाँ जा रही हो मुझे अकेली छोड़कर।
मंगला--अकेली कहाँ हो रानी! श्रेष्ठि कुमार आते ही होंगे।
(हँसती हुई शीघ्रता से चली जाती है)।

मित्रवती का कक्ष सजा हुआ है। आसंदिया रखी हैं। पर्यंकपर शैया बिछी है। जो रेशमी वस्त्रों से आच्छादित है। विविध प्रकार के सुगंधित पुष्पों से शैया सजी हुई है। कक्ष में यत्र तत्र धूपदान रखे हैं। जिसमें सुगंधित धूप जल रही है। बाहर पूर्णिमा की चांदनी छिटक रही है। आज मधुरात्रि है। नव परिणीता वधू मित्रवती वस्त्राभूषणों से लदी है। अपने सौंदर्य के कारण वह स्वर्ग की अप्सरा सी दिख रही है। वह कक्ष में

(2-2)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अकेली है। अर्ध रात्रि हो चुकी है। मित्रवती विकलता से कक्ष से बाहर भीतर आती जाती है। सोना चाहती है पर नींद कहाँ? वह श्रेष्ठि चारुदत्त की प्रतीक्षा में है।

मित्रवती—(स्वगत) अभी तक नहीं आये आर्यश्रेष्ठि! कदाचित् मित्रों के बीच हास परिहास चल रहा हो। रात्रि का द्वितीय पहर भी समाप्त हो चुका....आते ही होंगे। (खटका होता है) जान पड़ता है आ गये। (मंद मंद मुस्कुराते हुये द्वार की ओर पीठकर बैठ जाती है। थोड़ी देर बाद किसी को आया न जान उठकर द्वार पर झाँकती है) अरे, वायु भी मेरे साथ मुझे अकेला पा अठखेलियाँ कर रही है। (पुनः आसंदी पर बैठे ही बैठे अलसाकर जम्हाई लेती है। आँखे मुँद जाती हैं। चन्द क्षणों बाद चौंककर जागती है। सहसा हृदय में विषाद की काली रेखा खिच जाती है)। कहीं ऐसा तो नहीं कि वे आयें ही नहीं। क्या ऐसा भी हुआ है कि नवपरिणीता वधू की शैया के सुमन अछूते रहकर ही मुरझा गये हों। न..... नहीं..... नहीं ऐसा नहीं हो सकता, नहीं हो सकता। मित्रा, तू कितनी शंकालु है। मिलन के पूर्व ही अपने प्रियतम के प्रति कटुता, यह धारणा! ऐसे विचार मेरे मन में क्यों आये? जाओ, जाओ हे दुर्विचारो! मैं अपने अनन्य प्रिय के विरुद्ध तुम्हें स्थान नहीं दे सकती। मन में बस एक प्रियतम को ही स्थान है। तुमने आने की कैसे अनधिकार चेष्टा की? ....(हर्षित हो) अब आते ही होंगे। (रजत थाल में स्वर्णदीप रखती है और कर्पूर जलाती है) प्रथम दर्शन कर आरती उतारूँगी। उनकी प्रेममय वाणी का आस्वादन करूँगी। (प्रसन्नता से मुख खिल उठता है) आनंद सागर में डुबकियाँ लगाते हुये शनैः शनैः निद्रामग्न हो जाती है। (पटाक्षेप)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थ दृश्य

तीन दिन पश्चात्

समय-रात्रि द्वितीय प्रहर,
स्थान-मित्रवती का कक्ष,

मित्रवती अपने कक्ष में है। प्रथम रात्रि की भांति प्रसन्न मुख नहीं अपितु अत्यन्त मलिन उदास है। उसे चारुदत्त के दर्शन तक नहीं हो पाये हैं।

मित्रवती– (स्वगत) तीन अहोरात्रि के पश्चात भी पति-देव के दर्शन न हो पाये, इसे क्या कहा जाय ? (करुणा जनक हास्य) दुर्भाग्य ! घोर दुर्भाग्य। दासी से ज्ञात हुआ कि श्रेष्ठि-पुत्र अध्ययन कक्ष में ही रात्रि व्यतीत करते हैं। उन्हें खाने पीने सोने तक की सुधि नहीं रहती। अध्ययन ही उनका सर्वस्व है, वही व्यसन भी।........यही निर्णय कर पाई हूँ कि उन्हें मुझसे कोई प्रयोजन नहीं। जब अध्ययन ही करना था तो फिर विवाह रचाकर मेरा जीवन नष्ट क्यों किया ?....लाज संकोच छोड़ तनिक एक बार पूछूँ तो सही कि आखिर यह निठुरता क्यों ? मुझसे कब की शत्रुता का प्रतिशोध ले रहे हो ?

(धीरे धीरे चारुदत्त के कक्ष की ओर बढ़ती है। चारुदत्त अध्ययन में मग्न हैं। सहसा पायल व कंगन की झंकार से चौंककर द्वार की ओर देखते हैं। मित्रवती का प्रवेश)

चारुदत्त–अरे, मित्रवती ! तुम यहाँ कहाँ ?

मित्रवती–क्यों, कुछ अनहोनी सी हो गई ? सचमुच मेरा आना आश्चर्ययुक्त तो है ही। प्यासे के निकट स्वयँ नदी को आते नहीं देखा। (किंचित् व्यंग से) तीन अहोरात्रि की प्रतीक्षा के पश्चात् भी जब आपके दुर्लभ दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो सका तो लाज संकोच छोड़ मैं ही चली आई। धैर्य किनारा कर गया।

चारुदत्त-अच्छा हुआ चली आईं। जब हम दोनों पूर्व परिचित हैं, तब लाज संकोच के आवरण की क्या आवश्यक्ता? बैठो मित्रवती!

मित्रवती-(गहरा उच्छ्वास ले) बैठकर ही क्या करूँ? आपके अध्ययन में बाधा जो होगी।

चारुदत्त-(ध्यान न देते हुये) सो तो होगी ही, पर आई हो तो तनिक बैठ लो। तुम्हें अभी तक नींद नहीं आई?

मित्रवती-नींद तो आपने हरण कर ली है। इसीलिये तो मैं आपके अध्ययन मे विघ्न बनकर आ पड़ी हूँ। (बैठ जातीहै)

चारुदत्त-कोई बात नहीं। मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं। पर नींद की तुमने एक ही कही मित्रवती! भला किसी की नींद कोई कैसे छीन सकता है! यदि ऐसा मान लिया जाय तो प्रत्येक द्रव्य की स्वतंत्रता नष्ट हो जायगी और इस तरह सारे सिद्धाँत ही मिथ्या सिद्ध होंगे।

मित्रवती-व्यवहार में पारमार्थिक सिद्धाँतों को न जोड़िये देव!

चारुदत्त-किन्तु व्यवहार बिना परमार्थ के निरर्थक है भद्रे!

मित्रवती-मैं आपसे शास्त्रार्थ करने नहीं आई हूँ। केवल यह जानना चाहती हूँ कि आपका अध्ययन कभी समाप्त होगा या नहीं?

चारुदत्त-अध्ययन भी कभी समाप्त होने की वस्तु है?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसकी गहराई में जितने पैठते जाओ; उतना ही विस्तृत होता जाता है।

मित्रवती–तब फिर इसमें से कब तक निकलने का विचार है ?

चारुदत्त–निकलने का ? क्या अध्ययन से तुम्हें शत्रुता है शुभे !

मित्रवती–आप ही बतायें कि जो वस्तु अपने प्रिय को पाने में बाधक बनें; उसे कौन सी संज्ञा दी जा सकती है ?

चारुदत्त–सबसे प्रथम तो यही भूल है कि कोई किसी का प्रिय अथवा बाधक है। फिर शत्रुता अंतरंग की दुष्प्रवृत्ति का नाम है मित्रा। वह मानव स्वभाव नहीं।

मित्रवती–तो क्या विवाह कर पत्नी को तिल तिल जलाने का मानव स्वभाव है ?

चारुदत्त–(सरलता से) नहीं, कौन कहता है ?

मित्रवती– आप स्वयँ इसे चरितार्थ कर रहे हैं।

चरुादत्त– यह कैसा मिथ्या दोषारोपण है शुभे ! मैं स्वप्न में भी मन-वाणी-कर्म से किसी के प्रति दुर्भावना नहीं कर सकता। फिर तो तुम मेरी विवाहिता पत्नी हो। भला...........

मित्रवती– तब फिर यही बतला दें कि पत्नी के प्रति पति का क्या कर्त्तव्य है ?

चारुदत्त–(हँसते हुये) लो इतनी सी बात के लिये कष्ट किया। रूठो मत, अब मैंने गृहस्थाश्रम संबंधी ग्रन्थों की अनुक्रमणिका बना ली है। बस अब एकाग्र हो इन्हीं ग्रन्थों का अध्ययन प्रारम्भ करना चाहता हूँ। ज्ञान हुआ और आचरण में उतारा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रवती—तब फिर विवाह की क्या शीघ्रता थी, ज्ञानवान बन जाते। ऐसा तो कहीं भी नहीं सुना कि आग लगने पर कोई कुआ खोदता हो।

चारुदत्त—यथार्थतः तुम्हारा कथन सत्य है। मेरे भी निजी विचार ऐसे ही थे। क्या करूँ माता पिता के समक्ष एक न चली। विवश हो उनकी आज्ञा माननी पड़ी। मुझे आध्यात्मिक ग्रन्थों में अत्यधिक रस मिलता था। अतः गृहस्थाश्रम सम्बन्धी ज्ञान नहीं कर पाया। यह मेरी भूल है।

मित्रवती—तब क्या उस भूल का प्रायश्चित मैं करूँ ?

चारुदत्त—कदापि नहीं, तुम क्यों करोगी। मैं स्वयँ करूँगा। मातु श्री की तुम इकलौती लाड़ली पुत्रवधू हो। उन्होंने सुख सुविधा जुटाने में किसी प्रकार कोर कसर न रखी होगी। मुझे विश्वास है कि न तुम्हें कोई कष्ट होगा न उनसे कोई अनुयोग।

मित्रवती—निश्चय ही आपका विश्वास यथार्थ है श्रेष्ठिपुत्र! पर क्या धन वैभव से हृदय की प्यास बुझ सकती है ?

चारुदत्त—कभी नहीं भद्रे! कभी नहीं। त्रिकाल में भी ऐसी अनहोनी नहीं हुई। प्रतीत होता है तुम भी आध्यात्मिक विचारधारा वाली हो।

मित्रवती—(अस्वीकार करना चाहती है)………मुझे गलत………

चारुदत्त—नहीं मित्रवती। मेरा तुम पर कोई अभियोग नहीं। यह बहुत ही अच्छा हुआ। सचबात यह है कि जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस रहस्य को समझ लेता है, वह कभी भौतिक आकर्षणों में विमुग्ध नहीं होता।

मित्रवती—ओह! आप बड़े निर्मम हैं।

चारुदत्त—(सरलता से) हूँ तो नहीं, पर निर्मम बनने का प्रयत्न अवश्य कर रहा हूँ। काश! सफलता प्राप्त कर सकूँ।

मित्रवती—(निराश हो) मैं भी यही कामना करूँगी कि आपका प्रयत्न सार्थक हो।

चारुदत्त—धन्य हो मित्रवती धन्य हो। मैं तुमसे मन ही मन भयभीत था; पर तुमने स्वयँ साक्षात्कार कर मेरे मन पर का बड़ा भारी भार उतार दिया। (हर्ष से विह्वल हो) मैं कितना भाग्यवान हूँ। मेरी विचारधारा के अनुरूप ही मेरी जीवन संगिनी मिल गई। आध्यात्मिक रस का स्वाद ही कुछ ऐसा मधुर होता है; जिसे कोई छोड़ना नहीं चाहता। (मित्रवती जाने लगती है) हाँ जाओ भद्रे! रात गहरी रही है। (वह उदास खिन्न मन चली जाती है)।

चारुदत्त—(स्वगत) अब मैं भी निश्चिंत हो आध्यात्मिक अध्ययन में अवगाहन करता रहूँगा। धन्य हो मित्रवती! तुमने मुझे सारी चिन्ताओं से मुक्त कर दिया। मेरा रोम रोम पुलकित है। अब इस सूची से क्या प्रयोजन (फाड़ देता है)।

मित्रवती अपने कक्ष में लौट आती है। आते ही शैया में मुँह छिपाकर रोने लगती है। कुछ समय पश्चात् सचेत हो बैठ जाती है। कभी उदास उद्विग्न सी कक्ष के एक छोर से दूसरे छोर तक फिरती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रवती—(स्वगत) आर्यपुत्र के सामने जैसे मैं सब कुछ भूल गई! कुछ न कह सकी। मन का ज्वालामुखी फूट पड़ना चाहता था पर उनकी सहज सरलता के छींटों से शाँत हो गया। (व्यंगात्मक हँसी हँसकर) और मेरी रुचि के प्रतिकूल मुझे विरागिनी समझ बैठे। क्या कहूँ।...पति पत्नी की मधुरात्रि कितनी सुन्दर! कितनी सुहावनी! प्रथम मिलन का यह कितना अनोखा उपहार! ...कदाचित् संसार में मैं पहिली पत्नी हूँ इतनी भाग्यवान। (एक २ कर सब आभूषण उतार देती है) अब किसलिये ये आभूषण! क्या काम इनका? जब पति ने नहीं अपनाया तो शृंगार का क्या हो! सादा जीवन बिताने के लिये बाध्य हूँ।......(कुछ सोचकर) वे अपने ही विचारों में ऐसे खोये थे कि वे मेरी उद्विग्नता को भांप न सके। मुझे सजी धजी देखकर भी उनके मन में अनुराग न जागा। मेरी ओर नजर भर देखा तक नहीं! वाह रे अद्भुत पुरुष! न दरश, न परस। मैंने कहा—निर्मम हो। सहज ही बोल उठे--प्रयास कर रहा हूँ। उनके सारल्य पर तन मन न्योछावर है। असीम अनुपम है उनकी निश्छलता। अब सात्विक जीवन ही मुझे इष्ट है। मैं उनकी अनुगामिनी बनूँगी। अपनी आकांक्षाओं की होली जलाकर उनकी इच्छा की दासी बनूँगी। यही नारी धर्म है। अपने मन को इसका अभ्यस्त बनाऊँगी। ......भाग्य! निष्ठुर! तू कहाँ हँस रहा था मुझ पर। वैभव के विशालागार में बैठा कर भी उससे अछूता रहने को विवश कर दिया। विविध पक्वान्नों से भरी थाली परोसकर भी मुझ क्षुधित के खाने पर प्रतिबन्ध लग गया। दैव! तेरी क्रूरता को क्या कहूँ!

चारुदत्त पत्नी से उदासीन हो अध्ययन में सम्पूर्ण रीत्या लीन हो गये। वे घर में ही साधु सन्यासी की तरह जीवन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यतीत करने लगे। उनका व्यवहार देखकर माता पिता अत्यंत दुखी रहने लगे। वे पुत्र का विवाह कर अहर्निशि पश्चात्ताप की अग्नि में झुलसते रहे। पुत्र को समझाया, डाँटा परन्तु सब व्यर्थ। उलटे घड़े में पानी भरने के समान निराशा ही हाथ लगी। विरहिणी मित्रवती को देख उन दोनों वृद्ध प्राणियों को घोर मानसिक कष्ट होता। होनहार प्रबल है। भला कौन सद्गृहस्थ अपनी संतान का विवाह नहीं करते ?

पंचम दृश्य

समय—सायंकाल, श्रेष्ठी भानुदत्त का महल,

स्थान—भवन से लगा हुआ उद्यान का एक भाग

पति वियोग से व्यथित मित्रवती दिनों दिन कृशकाय होने लगी। उसे खान पान वस्त्राभूषण सब से अरुचि हो गई। वह उद्यान में बैठी एकाकी सितार पर गीत गा रही है। संगीत के द्वारा वह अपनी वेदना यदा कदा हल्की कर लिया करती है।

गीत

भाग्य निर्माता बना कितना निठुर है।
नित्य नव संगीत उठता था हृदय में।
कंठ स्वर में गीत था, गति ताल लय में ॥
तार टूटे हृदय वीणा के कि सहसा—
हो गया अवरुद्ध झंकृत कंठ स्वर है।
भाग्य निर्माता बना कितना निठुर है ॥
मैं लुटी, मधु कल्पना के स्वप्न भागे।

(३८)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नींद में सो गये गहरी भाग्य जागे ॥
चिर विरह, चिर वेदना, चिर जागरण का—
आज मुझको मिला आँचल में कि वर है।
भाग्य निर्माता बना कितना निठुर है ॥

(इसी समय सुमित्रा देवी अपनी पुत्री की कुशल क्षेम पूछने आई हैं। सुमित्रा का प्रवेश)।

मित्रवती—(सितार एक ओर रखती हुई फीकी हँसी हँसकर) आओ माँ ! बैठो।

सुमित्रा देवी—(पुत्री को निर्बल रोगिणी समझ घबरा कर बैठते हुये) मित्रा ! कब से अस्वस्थ है पुत्री ! भला खबर तो दी होती।

मित्रवती—स्वस्थ हूँ माँ ! खबर क्या देती ?

सुमित्रा देवी—(साश्चर्य) तू स्वस्थ है ? क्या कह रही है पगली ! तनिक दर्पण में अपना मुँह निहार, क्या से क्या हो गया बिलकुल पीला मुरझाया लगता है।

मित्रवती—अच्छी तो हूँ माँ ! तुम व्यर्थ ही चिंतित हो रही हो।

सुमित्रा देवी—ज्ञात होता है औषधि का भी ठिकाना नहीं। समधिन जी को तेरे स्वास्थ्य की चिन्ता नहीं है क्या ? (व्यंग से) पहिले मित्रवती बड़ी प्यारी लगती थी, अब उसी के प्राण आँखों में समाये हैं। सासू जी को कोई प्रयोजन ही नहीं।

मित्रवती—माँ ! माता जी को कुछ न कहिये। वे तो मुझ से अभी भी पूर्ववत स्नेह रखती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुमित्रा देवी—(उपेक्षा से) तभी वधू की दयनीय अवस्था हो रही है। तू स्वस्थ है, फिर यह वैरागियों सा वेश क्यों बना रखा है? न ढंग के वस्त्र, न आभूषण। सास को शृंगार अच्छा नहीं लगता क्या? इतने विश्रुत नगर श्रेष्ठी की वधू सन्यासि.... ।

मित्रवती—(बीच ही में बात काट कर) ऐसा न कहो माँ! माता जी की ओर से मुझे कोई कष्ट नहीं। यदि उनका भी स्नेह न मिला होता तो मेरा जीवन कब का समाप्त हो जाता।

सुमित्रा देवी—यदि उनका भी स्नेह न मिला होता! इसका क्या अभिप्राय? (विचारने की मुद्रा में)...क्या मेरे दामाद असंतुष्ट हैं? चारुदत्त तो बड़े सज्जन हैं, उन जैसा कुंवर कोई बिरला ही होगा। लाखों में एक ही हीरा है। (मित्रवती मौन नतमस्तक बैठी है) अरी! मौन क्यों है बेटी। कुछ तो कह अपनी माँ से। (पीठ पर हाथ फेरती हैं) मैं तेरा दयनीय मुख नहीं देख सकती। हम लोगों का और बैठा ही कौन है? तेरा सुख दुख हमारा सुख दुख है। तुझे देख देख कर ही तो हम जीवित हैं। (मित्रवती की ठोड़ी पकड़ कर मुंह ऊँचा करती है। आँखों में आँसू देखकर) हाय, हाय! तू रो क्यों रही है बिटिया! तुझे देखकर कलेजा मुँह को आता है। (मित्रवती के आँसू अजस्र धारा की तरह प्रवाहित होने लगते हैं। वक्ष से लगाकर भरे गले से) बोल पुत्री! तुझे क्या कष्ट है? कह तो सही अपनी माँ से। तेरे लिये आकाश के तारे भी तोड़ना पड़े तो तोड़ूँगी। ये संबंध करने में क्या हम लोगों से कुछ भूल हो गई है?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रवती—(सम्हल कर) माँ ! तुमसे भला क्या भूल होगी। माता पिता सन्तान का कभी अकल्याण नहीं चाहते। ...पर यदि सन्तान का दुर्भाग्य उदित हो तब......(गहरा निःश्वास लेते हुये) कोई क्या कर सकता है ? मेरे भाग्य में जीवन भर रोना ही बदा है।

सुमित्रा देवी—ऐसी अपशकुन की बातें मुँह से नहीं निकाली जातीं मेरी बच्ची ! तेरा सौभाग्य चिरकाल तक अमर रहे। बिटिया ! अपने जी की व्यथा तो कह मुझसे ! क्या माँ को न बतलायगी ? (दुखित होती है)।

मित्रवती—क्या कहूँ माँ ! बात कहने योग्य भी तो हो !

सुमित्रा देवी—(गंभीर हो) समझी ! समधिन की प्रवंचना से मैं बिलकुल अनभिज्ञ रही, मैं नहीं जानती थी कि सगी ननद हमें इस तरह तड़पायँगी। ज्ञात होता है चारुदत्त तुमसे बोलते नहीं। सत्य है न ?

मित्रवती—(कुछ क्षण मौन रहकर) इसमें माता जी का कोई दोष नहीं है माँ ! वे भी मेरे दुःख में समान ही दुखी हैं। बेचारी क्या करें। अपने को ही भला बुरा कहती रहती हैं। अध्ययन के सम्मुख माता जी, श्वसुर जी सभी विवश हो गये। सचमुच भाग्य के सामने सभी को हार मानना पड़ती है।

सुमित्रा देवी—(क्रोध पूर्वक) इसे भाग्य नहीं कहते मित्रा ! समधिन भली भाँति अवगत थीं अपने पुत्र के स्वभाव से। फिर उन्होंने जान बूझकर क्यों पराई कन्या जबर्दस्ती गले से बाँध दी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रवती—भविष्य कौन जानता है माँ । वे भी अपना परिवार हरा-भरा-सुख वैभव संपन्न देखना चाहती थीं। कदाचित् दैव को यह स्वीकार न था। मेरे साथ उनकी भी युग युग से संजोई साधों पर तुषारापात हो गया।

सुमित्रा देवी—पुत्री तू समझदार है। सहिष्णु है, अतः ऐसा कह रही है। मैं तेरी सासू से पूछूँगी कि क्या अपनी भतीजी ही मिली थी इस विरह की आग में झोंकने। संसार की और कुमारियाँ मर गई थीं।

मित्रवती—ऐसा न कहो माँ.... (सजल नेत्रों से) ऐसा ....न कहो। मेरे स्थान पर जो भी कन्या होती क्या उसकी भी यही अवस्था न होती ? क्या उसके माता-पिता अपनी पुत्री को व्यथित देख सुखी रह सकते थे ? इस कारण किन्हीं व्यक्तियों को संतप्त होना ही पड़ता।

सुमित्रा देवी—तो क्या तू ही उपयुक्त थी ?

मित्रवती—प्रतीत ऐसा ही होता है। नियति के संचालन में कभी भूल नहीं होती माँ !

सुमित्रा देवी—इसी को कहते हैं 'चलनी में दूध दुहो, भाग्य को दोष दो।' हाथ धर कर तेरी सासू ने गलती की है और दंड तुझे भुगतना पड़ रहा है।

मित्रवती—माँ ! मानवकृत कार्यों में भूलें होती हैं, किन्तु नियति के कार्यों में नहीं। वहाँ प्रत्येक के भले बुरे कार्यों का लेखा-जोखा है। बोये हुये बीजों के अनुसार ही क्रमशः अच्छे बुरे फल चखना पड़ते हैं। मैं अपने पूर्वकृत दुष्कार्यों का फल पा रही हूँ। किसी को दोष देना व्यर्थ है।

(४०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुमित्रा देवी—धन्य है मित्रवती ! तेरे धैर्य को। किसी सीमा तक तेरा कथन सत्य है। पर माँ की ममता को संतोष कहाँ ? समधिन जी के पास जाती हूँ। (खड़ी हो जाती है)।

मित्रवती—माता जी से कोई कटुवचन न कह बैठना माँ ! उनके हृदय में कहीं मर्म भेदी चोट न लग जाये एवं तुम्हें पश्चात्ताप करना पड़े।

सुमित्रा देवी—तेरी बात मानने में मैं स्वयं को विवश पा रही हूँ। फिर भी प्रयास करूँगी संयमित बोलने का। आश्चर्य है कि कल की अल्हड़ लड़की इन चंद दिनों में ही इतनी गहन गंभीर कैसे बन गई। यह भी प्रकृति की देन है। (वक्ष स्थल से लगाकर रुदन के स्वर में) जाती हूं पुत्री ! अब तुझे क्या समझाऊँ ? तेरी बुद्धि मुझसे अधिक प्रौढ़ हो चुकी है। दोनों कुलों की लाज निबाहना है तुझे। (जाते जाते) हे भगवन् ! सरलता की प्रतिमूर्त्ति मेरी पुत्री के संकटों को शीघ्र ही नष्ट करना। मेरी सारी आशायें इसी पर केन्द्रित हैं। (प्रस्थान)

(सुमित्रा देवी का देवल देवी के कक्ष में प्रवेश)

(देवल देवी की मुद्रा भी दुःख की छाया से परिवेष्टित दिख रही है। वे उठकर मुस्कुराते हुये स्वागत करती हैं। उस मुस्कुराहट में भी अपार वेदना स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है। सुमित्रा देवी भी इस बात का अनुभव करती हैं)।

देवल देवी—आओ बैठो भाभी ! कहो सब कुशल तो है ?

सुमित्रा देवी—कुशल क्षेम कैसी ? जिसकी एक ही पुत्री और वह भी पति वियोग से व्यथित हो, उन माता-पिता को भला कहाँ चैन ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवल देवी—सच कह रही हो भाभी ! कदाचित् विधाता को दोनों परिवार इसी प्रकार व्यथित करना थे। मैं क्या करूँ भाभी, तुम्हीं बताओ कोई उपाय ?

सुमित्रा देवी—इसका तो पहिले विचार करना चाहिये था ननद जी ! 'अब पछताये होत का, जब चिड़िया चुग गई खेत।' जब आप जानतीं थीं कि चारुदत्त जी अध्ययन में रमे हैं; तब व्याह ही न करना था। पराई कन्या को दुःख देने में आपको कोई लाभ तो हुआ नहीं।

देवल देवी—भाभी ! कम से कम तुम ऐसा न कहो। मेरी छाती के नौ खंड होते हैं। मित्रवती क्या तुम्हारी थी, मेरी नहीं ?

सुमित्रा देवी—तुम्हारी ही सही, पर पुत्र के स्वभाव से तो अपरिचित नहीं थीं।

देवल देवी—चारुदत्त को विरागी सा देखकर ही मैंने सुन्दर सुशील निपुण मित्रवती को अपनी वधू बनाने की अभिलाषा साकार की। मुझे पूर्ण विश्वास था कि सर्वगुण संपन्न मित्रा चारु को अवश्य मोह लेगी एवं उसकी जीवन दिशा परिवर्त्तित कर गार्हस्थ जीवन को सफल बना सकेगी। ऐसी महान् क्षमता की रेखायें मुझे मित्रवती में ही परिलक्षित हुईं।

सुमित्रा देवी—आपका परीक्षण हुआ और मेरी फूल सी बच्ची का जीवन नष्टप्राय। मैं समझ रही थी कि मित्रा का व्याह बहुत ही अच्छा घर वर देखकर किया है। पर यहाँ दरिद्रों से भी हीनतम जीवन है।

देवल देवी—(दुखित स्वर में समझाते हुये) भाभी ! तुम भी माँ हो। तनिक गंभीरता से सोचकर देखो जो मैंने किया है, क्या प्रत्येक माँ का हृदय इस मार्ग को उचित न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहेगा ? (उत्तेजना वश) कौन माँ अपनी वंशबेलि बढ़ती हुई नहीं देखना चाहती ! हँसने खेलने की नन्हीं उम्र में वैरागियों सी उदास मनोवृत्ति देखकर किस माँ का हृदय द्रवित न होगा भाभी ! (शांति पूर्वक) तुम्हीं बताओ क्या मेरी कामना अपनी एकमात्र वधू को व्यथित करने की थी ? सुमित्रा देवी लज्जित हो जाती हैं) मौन क्यों हो भाभी ! बोलो, कुछ तो कहो क्या मैं अनुचित कह रही हूँ ?

सुमित्रा देवी—आपका कथन सत्य है ननद जी ! मैं ही ठीक नहीं समझ पा रही थी। अहँ की भावना ने मेरी बुद्धि कुंठित कर दी थी। सचमुच जान बूझकर कोई भी अपने घर पर विपत्ति की काली छाया नहीं डालना चाहता।

देवल देवी—अब हमें विचार कर कोई ऐसा उपाय निकालना चाहिये; जिससे चारु की रुझान सांसारिक विषयों की ओर आकृष्ट हो।

सुमित्रा देवी—आप स्वयँ समझदार हैं। अपनी अज्ञानता के कारण मैं जो उलटा सीधा कह बैठी हूं, उसके लिये लज्जित हूँ और बारंबार क्षमायाचना करती हूँ। (हाथ जोड़ती हैं)।

देवल देवी—(हाथ पकड़कर) नहीं, नहीं भाभी ! इसकी कोई आवश्यकता नहीं। तुम क्या, कोई भी माँ अपनी कन्या को विरह की ज्वाला में जलते देखकर अधीर हो जायगी। इन ममता के उपालंभों से मेरी आँखें खुल गई। अब अवश्य इस दुःख से निवृत्ति का उपाय निकल आयेगा। आज ही देवर रुद्रदत्त जी को बुलाकर इस विषय में उनसे परामर्श करूँगी।

सुमित्रा देवी—मित्रवती की आप पर पूर्ण श्रद्धा है। उसकी बात न मानकर मैं आपसे कटुव्यवहार कर बैठी। अब मैं जाती हूँ। विलम्ब हो रहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवल देवी—नमस्कार भाभी ! मन में किसी प्रकार की ग्लानि न रखना। कभी-कभी आती रहा करो।

सुमित्रा देवी—(हाथ जोड़कर) नमस्कार। (जाती हैं)

पटाक्षेप

---*---

द्वितीय अंक

प्रथम दृश्य

श्रेष्ठी भानुदत्त का महल

देवल देवी—अपने कक्ष में बैठी हैं। वे बार-बार द्वार की ओर झाँकती हैं; मानो किसी की प्रतीक्षा में हों। वे उठकर द्वार की ओर जाती हैं। किसी को न देख तुरन्त लौटकर—

देवल देवी—(स्वगत) अभी तक रुद्रदत्त जी नहीं आये।.........प्रतीक्षा के क्षण भी कितने असीमित हो उठते हैं। (कुछ सोचकर) क्या करूँ, मंगला को पुनः भेजूँ।.........(बुलाती हैं) मंगला !

मंगला—(नेपथ्य से) आई माता जी।

देवल देवी—जा! तनिक रुद्रदत्त जी को बुला ला।

मंगला—जी !

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(इतने में रुद्रदत्त का प्रवेश)

रुद्रदत्त—(हँसते हुये) बार-बार बुलाने की आवश्यकता नहीं है भाभी जी। मैं आ पहुँचा।

देवल देवी—(माथे का पल्ला सम्हालती हुई) अरे, आइये आइये। बड़ी उमर हो। आपकी ही बाट जोह रही थी। सब कुशल मंगल तो है ?

रुद्रदत्त—(पास ही आसंदी पर बैठते हुये) आपके आशीर्वाद से सब सानंद हैं ! पर आप बहुत उदास प्रतीत हो रही हैं। अस्वस्थ हैं क्या ?

देवल देवी—मेरी अस्वस्थता की कुछ न पूछिये। (दुख भरी सांस ले) अच्छी भली तो हूँ।

रुद्रदत्त—आपकी वाणी से नैराश्य झलक रहा है। कोई गोपनीय रहस्य है क्या ?

देवल देवी—हाँ, कुछ ऐसी विषम उलझन आ गई है जो मैं सुलझा नहीं पा रही हूँ। तदर्थ ही आपको कष्ट दिया है।

रुद्रदत्त—कष्ट की कोई बात नहीं भाभी ! निःसंकोच कहें। मैं सेवा हेतु सदैव प्रस्तुत हूँ।

देवल देवी—सो तो जानती हूँ कि यह कार्य आप सहज ही कर लेंगे। यह जो आपका लाड़ला है न !

रुद्रदत्त—(हँसकर, बीच ही में) चारुदत्त ? सो......

देवल देवी—सो क्या ? (किंचित् रोष से) विवाह हुये इतने दिन हो गये परन्तु मित्रवती की ओर फूटी आँखों भी नहीं देखता। वह बेचारी पति वियोग में सूखकर कांटा हो गई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रुद्रदत्त—(साश्चर्य) हैं ! ऐसा क्यों ? आपकी बात कुछ विचित्र सी लगती है।

देवल देवी—(दुखित हृदय से) है तो सचमुच विचित्र ही, फिर भी बात सत्य है। मुझे क्या ज्ञात था कि चारु पर इतनी गहरी विरक्ति छा गई है कि वह गार्हस्थ-जीवन में प्रविष्ट होने पर भी ज्यों की त्यों बनी रहेगी।

रुद्रदत्त—तो क्या आपने उसे उसके कर्त्तव्य के प्रति सचेत नहीं किया ?

देवल देवी—भाई, मैं तो हिम्मत हार चुकी। अब मेरी बुद्धि भी काम नहीं करती।

रुद्रदत्त—मुझे ऐसी आशा नहीं है भाभी ! कि चारु आपकी आज्ञा का उलंघन कर सके, सुशील है वह।

देवल देवी—हाँ, तो उसने आज्ञा का उलंघन कहाँ किया ? कहता है आपके आदेशानुसार मैंने विवाह कर लिया। घर भर गया। अब मेरे मन को कुछ स्वतंत्रता दीजिये।

रुद्रदत्त—वाह री स्वतंत्रता !

देवल देवी—(समझाते हुये) उद्दंडता भी नहीं की। ऊपर से विनय शीलता के साथ अपने व्यवहार के लिये क्षमा याचना भी कर लेता है।

रुद्रदत्त—यह भी खूब रही। (कुछ सोचकर) अच्छा मैं मिलूँगा।

देवल देवी—उसके मन में किसी भी प्रकार से सांसारिक रुचि जागृत करिये; ताकि हरा भरा परिवार पुनः लहलहा उठे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रुद्रदत्त—आप निश्चिंत रहें। मनोकामना पूर्ण होगी। अच्छा अब आज्ञा दें।

देवल देवी—ऐसी जल्दी भी क्या है?

रुद्रदत्त—कुछ आवश्यक कार्य हैं आप से पुनः शीघ्र ही मिलूँगा। (खड़े हो जाते हैं)।

देवल देवी—कृपया चारु का ध्यान न भूलें।

रुद्रदत्त—ऐसी भूल असंभव है भाभी! चलूँ नमन!

(देवल देवी भी प्रत्युत्तर में हाथ जोड़ती हैं)।

पटाक्षेप,

—❀—

दृश्य द्वितीय

(संध्या समय, गोधूलि बेला)

रुद्रदत्त राजपथ पर चलते हुये

रुद्रदत्त—(स्वगत) व्यर्थ...... सभी उपाय व्यर्थ सिद्ध हो रहे हैं उस नन्हें से बालक के सम्मुख मेरी सारी कला-बाजियाँ मात खा बैठीं। पर मैं कब हार मानने वाला हूँ। आखिर हूँ तो उसका चाचा। धूप में थोड़े ही बाल चाँदी किये हैं। आज मेरा अंतिम उपाय है। और वह सफल होकर रहेगा। (दृढ़ता पूर्वक) देखता हूँ चारु कहाँ भाग कर जाता है। 'चाँदी की रेख, तमाशा देख' वसंतमाला के चौपथ पर मस्त हाथियों के द्वारा चारुदत्त को घेर कर सभी मार्ग अवरुद्ध करने का आदेश दे दिया है। नगर वधू सुंदरी वसंतमाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और उसकी कन्या वसंत तिलका का कहना ही क्या ? ऐसा लगता है मानों स्वर्ग से साक्षात् शची ही उतर आई है। एक बार तपस्वी भी विचलित हो उठे। ऐसा मादक सौंदर्य है। (प्रस्थान)

(दूसरी ओर से चारुदत्त को लेकर प्रवेश)

दोनों घबराये हुये हैं। नेपथ्य से लगातार हटो, भागो, मर जाओगे की ध्वनि आ रही है। भाग दौड़ मची है। भागते हुये व्यक्ति पथ पर दिख रहे हैं।

चारुदत्त—(हाथ पकड़े हुये) चाचा जी ! इस ओर से भाग चलें।

(दोनों भागते हैं। दो चार कदम चलकर)

रुद्रदत्त—(नेपथ्य की ओर देखकर घबराते हुये) देखो चारु ! इस ओर भी भीड़ लगी है। ज्ञात होता है राज्य के मतवाले गज घेरा तोड़कर भाग निकले हैं। हे भगवन् ! अब कैसे प्राण बचेंगे।

चारुदत्त—(नेपथ्य की ओर देख) भागो चाचा जी ! इस ओर भी हाथी की चिंघाड़ सुनाई पड़ रही है।

(कभी इस ओर कभी उस ओर भागते हैं। नेपथ्य में बाल-वृद्ध, नर नारियों का भयातुर करुण क्रन्दन हो रहा है। हटो, भागो की महावतों की आवाज भीड़ रूपी महासागर में विलीन हो जाती है)।

रुद्रदत्त—चलो चारु, वह रहा वसंतमाला का आवास गृह। वहीं चले चलें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारुदत्त—(साश्चर्य) ये वसंतमाला कौन देवी हैं ? मैंने अभी तक अपने संबंधियों में इनका नाम नहीं सुना। क्या आपकी परिचित हैं ?

रुद्रदत्त—परिचित तो नहीं, परिचय हो जायगा। फिर गणिका से पूर्व परिचय की आवश्यकता भी नहीं। सबके लिये सदा ही द्वार खुले रहते हैं।

चारुदत्त—(साश्चर्य आँखें फाड़कर) गणिका ! उसका नाम लेना भी पाप है चाचा जी ! उस रौरव नरक में जान बूझकर कौन पैर रखेगा ? वहाँ का वातावरण अत्यंत दुर्गंधित और विषैला रहता है।

रुद्रदत्त—रहे, हमें कौन वहाँ रहना है। संकट से बचने के लिये थोड़े समय आश्रय चाहिये। हाथी भागे और फिर हम अपने पथ पर। हमें उससे क्या लेना देना। (चीख चिल्लाहट नेपथ्य से)।

चारुदत्त—फिर भी चाचा जी ! मैं वहाँ न जाऊँगा। हाथी के पैरों तले कुचल जाना श्रेष्ठ है; अपेक्षाकृत वेश्या के घिनौने घर में प्रविष्ट होने के।

रुद्रदत्त—पर हम केवल आत्म रक्षा हेतु ही चन्द समय ठहरेंगे वत्स !

चारुदत्त—पर उस स्थल में सांस लेना भी दुष्कर हो जायेगा। मैं नहीं जाऊँगा।

रुद्रदत्त—(घबराकर) अर्थात् तुम मरना चाहते हो ? पर चारु ! मैं तुम्हें मरने नहीं दूँगा। रक्षा के लिये जिस उपाय का अवलंबन लेना पड़ेगा, मैं लूँगा। अरे पागल ! जीवन है तो बहुत धर्म कर लोगे। शरीर ही नहीं रहा तो..........

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारुदत्त—पर चाचा जी। गहराई में जाइये तो ज्ञात होगा कि हाथी से कुचले जाने पर शरीर का ही पतन होगा; जब कि वहाँ जाने पर नैतिक पतन हो इहलोक-परलोक दोनों विगड़ जायँगे।

रुद्रदत्त—(चारु का हाथ पकड़कर जबर्दस्ती घसीटते हुये) चारु! स्वयँ पर नहीं तो अपने माता पिता पर तो दया कर। दोनों की आँखों का तू एक ही तो तारा है। चल चल सब पाप मैं अपने ऊपर लेता हूँ।

चारुदत्त—पाप पुण्य किसी के बँटाये नहीं बँटते चाचा जी! मैं नहीं जाऊँगा, नहीं जाऊँगा।

रुद्रदत्त—तू अपनी ही टेक पकड़े है चारु। जैसे मैं तेरा कोई नहीं हूँ।

चारुदत्त—आप कोई आदेश देकर देखिये। हथेली पर प्राण रखकर खेल जाऊँगा।

रुद्रदत्त—(सानुनय) तेरे हाथ जोड़ता हूँ वत्स! वहाँ जाने का प्रायश्चित्त कर लेना।

(रुद्रदत्त खींचते हुये ले जाते हैं। चारुदत्त नहीं-नहीं कहता हुआ विवश हो चला जाता है)।

—❀—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृश्य तृतीय

विलासिनी वसंतमाला का भव्य प्रासाद

रुद्रदत्त और चारुदत्त दोनों वसंतमाला के द्वार पर पहुँच जाते हैं। दोनों सड़क की ओर मुख किये खड़े हो जाते हैं। वेश-भूषा से दोनों उच्च कुलीन धनाढ्य दिख रहे हैं। वसंतमाला की कुशल आँखें ताड़ जाती हैं। वह अपना मोहास्त्र चलाने इनके निकट संभाषण करने आ जाती है। वह प्रौढ़ युवती है। तरुणाई यद्यपि ढलाव पर है; तथापि सोलह शृंगार किये हुये देखने में सुन्दर रमणी प्रतिभासित हो रही है। सचमुच वह अपने समय की अद्वितीय सुन्दरी अवश्य रही होगी। वसंतमाला पीछे से आकर मादक मुस्कुराहट के साथ इन दोनों का स्वागत करती है।

वसंतमाला—(मुस्कुराते हुये) आइये, आइये श्रेष्ठि-वर! पधारिये। आपके आगमन से हमारी कुटिया पवित्र हुई। प्रकोष्ठ में चलने की कृपा करें।

(दोनों चौंक कर पीछे देखते हैं। चारुदत्त क्षणेक बाद घृणा से मुँह फेर लेते हैं। रुद्रदत्त उसकी कमनीयता पर आकर्षित हो विमुग्ध हो उठते हैं। सुध-बुध खोकर अपलक रूप रसास्वादन में तन्मय हो जाते हैं। उत्तर देने का ध्यान ही नहीं रहता। चारुदत्त चाचा की हालत देख ग्लानि से भर उठते हैं। उन्हें वेश्या की मधुरिम वाणी ऐसी लगती है; मानो सहस्रों बिच्छुओं ने एक साथ डसलिया हो। उन्हें अनुभूति होती है जैसे रौरव नरक का द्वार खुल गया है और वहाँ की अत्यंत विषैली वायु भर भराकर निकलने लगी है। वह उसकी लपटों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से झुलसकर अभी-अभी गिर पड़ेगा। चाचा को मौन सम्मोहित होते देख क्रोध भी आता है। वह वसंतमाला की ओर बिना देखे ही उत्तर देता है)।

चारुदत्त—(रूक्षता से) नहीं, नहीं हम लोग जा ही रहे हैं। गजराज के उपद्रव के कारण हमें यहाँ रुकना पड़ा।

वसंतमाला—कोई बात नहीं। अच्छा किया आपने। हमारे अहो भाग्य हैं। चलिये अंतर्कक्ष में बैठें, खड़े होकर मुझे लज्जित न करें।

चारुदत्त—उपद्रव शाँत होने में अधिक विलंब नहीं है।

वसंतमाला—फिर भी घड़ी भर बैठने में आपकी क्षति ही क्या ? दासी आपका परिचय पाकर कृतार्थ होगी।

रुद्रदत्त—(प्रकृतिस्थ हो) हाँ, हाँ, चारु ! चलो अंतर्कक्ष में ही बैठ जायँ। खड़े कब तक रहेंगे ? देवी की बात भी रह जायगी।

(चारुदत्त क्रोधित मुद्रा में मौन रहते हैं)

वसंतमाला—(हँसती हुई रुद्रदत्त का हाथ पकड़कर) हाँ, आप ही इन्हें ले चलें श्रेष्ठिवर ! (गहरी सांस लेकर) मुझमें इतनी क्षमता कहाँ ?

रुद्रदत्त—चलो चारु ! पागलपन न करो। (मंदस्वर से समझाते हुये) बार-बार की अस्वीकारता भली नहीं प्रतीत होती। (हाथ पकड़कर) आओ (विवश चारु चले जाते हैं)।

प्रकोष्ठ रमणीक भव्य है। चारों ओर भित्तियों पर विविध प्रकार के चित्र चित्रित हैं। कालीन पृथ्वी की शोभा बढ़ा रहा है। पलंग पर सुन्दर शैया लगी है। तीनों उसी पर बैठ जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंतमाला—विराजिये श्रेष्ठिवर ! (दोनों के बैठने के उपरांत वसंतमाला भी वहीं बैठ जाती है ।

वसंतमाला—(रुद्रदत्त से) श्रेष्ठिन् ! मुझे कुछ ऐसी सुधि आ रही है; जैसे मैंने आपको कहीं देखा है ?

रुद्रदत्त—हाँ देवी ! आपकी स्मरण शक्ति की प्रशंसा करनी ही होगी । लगभग एक युग बीत गया । श्रेष्ठी धनपाल जी के चिरंजीव के विवाहोपलक्ष्य में उनके सदन में हम लोग निमंत्रित थे । उसी समय अपने परम सौभाग्य के कारण चंद्र की भी उपेक्षा करने वाली आपकी अनिंद्य रूप राशि का पान किया था । आपका वह मनोहारी नृत्य……अहा ! आज भी आँखों के सम्मुख साकार हो उठता है ।

वसंतमाला—मुझे लज्जित न करें श्रेष्ठिन ! मैं केवल आप सबकी कृपाकोर पाने की अतृप्त अभिलाषिणी चरण-दासी हूँ ।

रुद्रदत्त—यह आपकी महानता है देवी ! जो आप अपने को ऐसा तुच्छ बता रही हैं । सच है 'हीरा मुख सों ना कहे, बड़ो हमारो मोल ।

वसंतमाला—(चारुदत्त से) आप संकोच न करें । निश्चित होकर बैठें महामन् !

रुद्रदत्त–देवी ! ये हमारे भतीजे श्रेष्ठी चारुदत्त हैं । इनकी प्रवृत्ति साधु-संतों सी है । अहर्निशि अध्ययन में दत्तचित्त रहते हैं । आज संध्या समय बहुत आग्रह करने पर नगर भ्रमण हेतु मेरे साथ हो लिये ।

वसंत माला—महान सौभाग्य से सहसा ऐसे महापुरुष के दर्शन लाभ होते हैं । कृतार्थ हुई मैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारुदत्त—(रोष से) चाचा जी ! व्यर्थ की बातों से प्रयोजन ही क्या है ?

वसंतमाला—श्रेष्ठिकुमार ! प्रतिवाद की मैं कोई आवश्यकता नहीं समझती। अच्छे को अच्छा कहना न्याय संगत है।.........आपकी मुद्रा खिन्न सी प्रतीत हो रही है। अनुपयुक्त न समझें तो कहिये कुछ मनोरंजन की व्यवस्था करूँ ? (दासी को जोर से पुकार कर) शुभा ! तनिक चौपड़ तो उठा ला।

शुभा—(नेपथ्य से) जी महादेवी ! अभी लाई।

चारुदत्त—नहीं, नहीं चौपड़ खेलने का अवकाश नहीं है। हमें शीघ्र ही जाना है।

(शुभा चौपड़ रखकर चली जाती है)

वसंतमाला—(चौपड़ बिछाते हुये आग्रहपूर्वक) एक बाजी खेलिये न !

चारुदत्त—(दृढ़ता से) नहीं (मुख कुछ तमतमा जाता है)।

वसंतमाला—(चारुदत्त से) रुष्ट न हों कुमार ! (रुद्रदत्त से) मुझे निराश न कर कृपया आप ही खेलने का कष्ट करें।

रुद्रदत्त—(प्रसन्नता से) अवश्य, अवश्य एक बाजी हो ही जाये।

(दोनों खेलते हैं। चारुदत्त चुपचाप देखते रहते हैं। रुद्रदत्त की हार पर हार होती जाती है)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंतमाला—(बाजी जमाते हुये कटाक्षपूर्वक) श्रेष्ठि कुमार। देखा आपने अपने चाचा जी को? निरंतर हार पर हार होती जा रही है। उनकी विजय हेतु तनिक आप ही सहयोग दीजिये। आप जैसे तरुण कुमार के सम्मुख भी उनका सम्मान जैसे अरक्षित सा हो उठा है।

चारुदत्त—(व्याकुल हो चुनौती स्वीकार करते हुये) किन्तु आप मुझे हरा न सकेंगी। चाचा जी! लाइये पांसे। इस बार आपकी ओर से मैं खेलूँगा।

वसंतमाला—बिना खेले ही मैं आपसे हार मानती हूँ कुमार! सचमुच मुझ वृद्धा का आपके साथ खेलना शोभास्पद नहीं कहा जा सकता। आप सुन्दर कामकुमार हैं। साथ ही मेरी पुत्री भी सुकुमारी वसंततिलका अत्यंत सुन्दरी व इस कला में निपुण है। आप दोनों की युगल जोड़ी मनोरम होगी। कृपया उसके साथ खेलकर आप अपनी प्रवीणता का परिचय दें। बेटी तिलका! (वसंततिलका का प्रवेश)।

वसंततिलका—कहिये माता जी! (इन दोनों को देख वह लजाकर ठिठक जाती है)।

वसंतमाला—आओ, आओ बेटी। ये कोई पराये थोड़े ही हैं।

वसंततिलका—(लजाते हुये) नमस्कार!

वसंतमाला—बेटी! श्रेष्ठिकुमार की तुम्हारे साथ चौपड़ खेलने की आकांक्षा है। जाओ अपने अंतर्कक्ष में ले जाओ। ध्यान रहे अतिथि की रुचि की अवमानना न होने पाये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंततिलका—आइये, अंतर्कक्ष में आपका स्वागत है। (विशेष आग्रह पूर्वक) आइये। (चारुदत्त चले जाते हैं)।

रुद्रदत्त—मेरा कार्य समाप्त हुआ देवी! आप चारुदत्त को काम कला में निपुण कर ही घर भेजेंगी। ऐसा मेरा विश्वास है। मैं अब जाना चाहूँगा।

वसंतमाला—आप निश्चिंत रहें श्रेष्ठिन्। मेरे आवास में आकर कोई अनभिज्ञ नहीं रहा है।

रुद्रदत्त—(जेब से कुछ अशर्फियाँ निकाल कर देते हुये) लो, यह रही आपकी दक्षिणा। नमस्कार!

वसंतमाला—(लेकर) नमस्कार।

वसंतमाला—(विचारते हुये, स्वगत) अभी जाकर किसी न किसी छल से चारुदत्त को मोहन चूर्ण खिला देना ही उचित रहेगा। अन्यथा इस धर्मात्मा संपत्ति शील पुरुष के समक्ष सारे कला कौशल व्यर्थ हो जायँगे।...कहीं सोने का पंछी उड़ न जाय। नहीं तो करोड़ों की निधि कैसे हाथ लगेगी? नहीं, नहीं ऐसी मूर्खता कर मैं जीवन भर पछताने की भूल करूँ? असंभव है। (दृढ़ता से) चारुदत्त! अब तेरा हाथ से बच निकलना दुःसाध्य ही नहीं असाध्य भी है। चलूँ, देखूँ क्या हो रहा है। (प्रस्थान)

(पटाक्षेप)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi.

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृश्य चतुर्थ

तीन वर्ष पश्चात्

वारांगना वसंत माला का प्रासाद;
समय रात्रि का प्रथम प्रहर
(वसंततिलका के कक्ष में चारुदत्त और वसंततिलका
का वार्त्तालाप)।

वसंततिलका—श्रेष्ठि पुत्र ! आज पूर्णिमा का चन्द्र कितना सुहावना लग रहा है।

चारुदत्त—(स्नेह पूर्वक) हाँ देवी ! कवियों के लिये सुहावना होते हुये भी तुम्हारी अनुपम सुन्दरता के सम्मुख हेय सा प्रतीत होता है।

वसंततिलका—(कटाक्ष करते हुये) ज्ञात होता है आपको मेरी प्रशंसा करने का रोग सा हो गया है। जब देखो तब............

चारुदत्त—(मुस्कुराते हुये) सच बात कहने को रोग की संज्ञा दी जाती है सुमुखि ?

वसंततिलका—सदैव व्यक्ति विशेष के गीत गाना रोग नहीं तो और क्या है ? मुझमें अनेकों त्रुटियाँ होना स्वाभाविक है किन्तु आपने कभी बतलाने का कष्ट नहीं किया।

चारुदत्त—मुझे तुममें कोई त्रुटि दृष्टिगत होती ही नहीं। ऐसा मालूम पड़ता है मानों विधाता ने चुन चुन कर सुन्दरतम कणों से तुम्हारा निर्माण किया है।

वसंततिलका—यह कहकर आप अतिक्रमण कर रहे हैं श्रेष्ठिपुत्र।...... कदाचित् उपहास भी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारुदत्त—(गंभीरतापूर्वक) नहीं .... कभी नहीं। तुम मेरे रोम-रोम में परिव्याप्त हो चुकी हो शुभे !

वसंततिलका—(उदास हो) धृष्टता क्षमा करें नाथ ! एक बात कहना चाहूँगी।

चारुदत्त—प्रसन्नता पूर्वक कहो देवी !

वसंत तिलका—बहुत दिनों से मन में छिपाये बैठी हूँ। पर........

चारुदत्त—अविलम्ब कहो। तुम विलम्ब कर व्यर्थ ही मेरी उत्सुकता बढ़ा रही हो।

वसंततिलका—बात यों है............

चारुदत्त—चुप क्यों हो गईं। शीघ्रातिशीघ्र कह कर विकलता शांत करो।

वसंततिलका—सोचती हूँ मन की कहकर कहीं आपको खो न बैठूँ।

चारुदत्त—(आश्चर्यान्वित हो) मुझे न खो बैठो: इसका तात्पर्य ? ऐसा विचार ही तुम्हारे हृदय में क्यों कर उद्भूत हुआ ? जब से आया हूँ एक क्षण के लिये भी तुमसे विलग नहीं हुआ।

वसंततिलका—मुझे शंका है कि मेरी बात श्रवण मात्र से कहीं आपकी पूर्व विचार धारा पुनः प्रवाहित न हो उठे, एवं पिंजड़े का पंछी उन्मुक्त हो गगन में न उड़ जाय।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारुदत्त—ऐसी अनोखी बात है ? फिर भी विश्वास रखो प्रिये ! पक्षी को पिंजड़ा अत्यंत प्रिय लगने लगा है। वह इस अवस्था का चिर अभ्यस्त हो चुका है। निकालने पर भी नहीं निकलेगा ?

वसंततिलका—आह ! यह तो और भी अनर्थ हुआ।

चारुदत्त - उफ ओ। आखिर तुम कहना क्या चाहती हो ? केवल प्रहेलिका सी मत बुझाओ। स्पष्ट कहो, सुनने हेतु क्षण-क्षण व्यग्रता बढ़ रही है।

वसंततिलका—जनश्रुति थी कि आप धर्मभीरु विषय भोगों से अत्यंत विरक्त थे। परन्तु मैंने इतने दिनों के सहवास में इसके बिलकुल ही विपरीत अनुभव किया। कृपया आप स्पष्टीकरण करें। मैं अपने कानों पर विश्वास करूँ अथवा आँखों पर ?

चारुदत्त—(एक क्षण उदास हो पुनः जोर से हँसते हुये) हः हः……देवी ! जो तुमने सुना है वह भी सच है, देख रही हो इसमें शंका को स्थान ही नहीं।

वसंततिलका—सचमुच मानव स्वभाव क्या इतना परिवर्त्तित हो सकता है ?

चारुदत्त—सारा संसार ही परिवर्त्तनशील है देवी ! फिर मानव स्वभाव इससे अछूता कैसे रह सकता है ? परिवर्त्तन का ही दूसरा नाम संसार है। तुम जैसी रमणी रत्न को पाकर मेरी आँखें खुल गईं। मैंने जाना कि सुख क्या चीज है। तुम्हारे साथ संसार के सुख का यथार्थतः उपभोग कर सका। इन्द्रियों के दमन से जीवन नीरस था और सच तो यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है कि मुझे इसके पूर्व विषय भोग का रस ही नहीं आया था तो ग्रहण कैसे करता ? सच्चा आनंद तो अब प्राप्त हुआ है। तीन वसंत निकल गये तुम्हारे साथ क्रीड़ा करते-करते; पर अतृप्ति अभी भी पूर्ववत बनी हुई है। निरंतर आकांक्षायें उग्र उग्रतर होती जाती हैं। कभी-कभी ऐसी साध होती है कि तुम्हें पलकों की ओट कर लूँ। पर क्या करूँ ?........काश ! ऐसा हो सकता तो कितना अनुपमेय सुख प्राप्त होता ?

वसंततिलका—आप बहक रहे हैं श्रेष्ठिकुंवर ! इस भौतिक सुख में लालसा का जो अदम्य प्रवाह प्रवाहित हो रहा है वह प्राणी को अवनति के गहन गह्वर में पटक देता है। जीवन समाप्त हो जाता है। वासना मस्तक धुनती है और मनुष्य कहीं का नहीं रहता।

चारुदत्त—तुम्हारे हृदय में दर्शनिकता कैसे प्रवेश पा गई जो ऐसी बातें कर रही हो ? आश्चर्य ! अत्यंत आश्चर्य !! मुझे कामकेलि की शिक्षा देने वाली शिक्षिका आज विराग का मंत्रजप रही है। कदाचित् मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा ?

वसंततिलका– स्वप्न आप नहीं, मैं देख रही हूँ। श्रेष्ठी भानुदत्त के परम अध्यात्मचेता सुपुत्र श्रीमान् श्रेष्ठी चारुदत्तजी नगरवधू वसंतमाला के विलास भवन में तीन वर्ष से निवास कर रहे हैं।

चारुदत्त—देवी ! इसका श्रेय संपूर्णतः तुम्हें ही है। तुमने मेरे जीवन का पथ प्रशस्त किया है। अभी तक मैं अहर्निशि ग्रन्थों में ही उलझा रहा एवं तरुणाई के बीते अमूल्य वसंत अपनी अज्ञानता के कारण यूँ ही खो दिये। इस लोक की सर्व सुलभ सामग्री का उपयोग न कर परलोक सुधारने में लगा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहा। अब विचार करता हूँ—वे कितने मंगलमय सुखद क्षण थे; जब मैंने अमरपुरी सदृश तुम्हारे भवन में प्रवेश किया था।

वसंततिलका—पर मैं आप से कुछ और ही आशा लगाये थी।

चारुदत्त—वह क्या ?

वसंततिलका—मैं आप से धर्मशास्त्र की शिक्षा चाहती थी।

चारुदत्त—इस पागलपन के चक्र में मत पड़ो प्रिये ! सरस जीवन को विरस कर अपने हाथों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी न पटको।

वसंततिलका—नहीं नाथ ! धर्मशास्त्र जीवन नीरस नहीं अपितु मानव जीवन को सार्थक बना देते हैं।

चारुदत्त—ज्ञात होता है तुम्हें किसी प्रकरण से अंतस्तल में मार्मिक चोट पहुँची है। उसका उपचार करना चाहती हो ? परन्तु भद्रे ! यह उपचार उपयुक्त नहीं है। करोड़ों दीनारें तुम्हारे चरणों में अर्पित कर चुका हूँ। और भी अपने मन की अभिलाषा प्रकट करो।

वसंततिलका—यह आपका सौजन्य है श्रेष्ठिकुंवर ! पर मैं आपके अमित प्रेम से ही तृप्त होती आई हूँ। ये वैभव का प्रदर्शन मुझे निस्सार सा लगता है।

चारुदत्त—किन्तु बिना ऐश्वर्य के मानव जीवन भी व्यर्थ है। संपत्ति के अभाव में जीवन की आवश्यकताओं की संपूर्त्ति कैसे हो ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंततिलका—आप का कथन नितांत सत्य है, परन्तु जीवन निर्वाह हेतु अतुल निधि ही अनिवार्य नहीं है नाथ! आवश्यकताओं को सीमित करने से भी जीवन चल सकता है।

चारुदत्त—तो ये वस्तुएँ सब व्यर्थ हैं?

वसंततिलका—(हँसकर) सच पूछो तो बिलकुल ही व्यर्थ हैं। तुम्हीं बताओ? क्या ये प्रदर्शनीय पदार्थ सुख देते हैं?

चारुदत्त—इनसे प्रसन्नता तो होती ही है।

वसंततिलका—मैं पुनः आपसे आग्रह करूँगी कि आप अपनी इस भूल को अवश्य ही सुधार लें।

चारुदत्त—मेरी बातों में भूल को स्थान कहाँ है प्रिये।

वसंततिलका—भूल को स्थान ही नहीं! अपितु जीवन की सबसे विशाल भूल होगी श्रेष्ठिपुत्र!

चारुदत्त—तुम कभी-कभी सूक्ष्म विचारक की नाईं दर्शन-शास्त्र के गंभीर रहस्य का उद्घाटन करने में समस्त चातुर्य लगा देती हो।

वसंतनिलका—भला मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ नाथ! मुझमें इतनी बुद्धि ही नहीं है।

चारुदत्त—अपने मुँह भला कौन सज्जन अपनी प्रशंसा करता है? सच बताओ देवी! क्या तुम्हें वैभव सुहावना नहीं लगता?

वसंततिलका—यों तो प्रत्येक प्राणी सुख का आकांक्षी है। मेरे अंतर में भी सुख-लालसा की अगणित जिह्वायें लपलपा रही हैं। उनके आक्रमण से ही संत्रस्त हो इस विलासी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रवृत्ति को अपनाये हुये हूँ। शारीरिक तुष्टि के अर्थ पौष्टिक सुस्वादु मधुर व्यंजन, ऐच्छिक मृदुल परिधान, रत्नजटित आभूषण एवं सेवा में दास दासियों के अतिरिक्त संचित निधि का उपयोग क्या है ? शेष निधि केवल भंडारगृह की शोभा ही बढ़ाती है। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि वह कंकड़ों के ढेर की तरह किसी काम न आने वाली तुच्छ वस्तु है।

चारुदत्त—तुच्छ वस्तु नहीं है देवी !

वसंततिलका—(किंचित् आवेशपूर्वक) और क्या है ? जो वस्तु किन्हीं अभावग्रस्त मनुष्यों के उपयोग में न आकर निरुपयोगी हो केवल भंडारगृह की शोभा बढ़ाये वह नगण्य नहीं तो और क्या है ?

चारुदत्त—जिसे तुम नगण्य कह रही हो; उसी निधि के सद्भाव में व्यक्ति समाज में अग्रणी बन जाता है। संसार की सभी छोटी बड़ी समस्यायें इसीसे हल होती हैं। निर्धन व्यक्ति का जीवन विषमता से ही संघर्ष करते हुये व्यतीत होता है, वह सुखचैन जानता ही नहीं।

वसन्ततिलका—फिर भी संतोष में जो अकथनीय आनन्द आता है, वह भोगों की तृष्णा में नहीं। लक्ष्मी से कहीं अधिक सरस्वती के गुण गाये जाते हैं। विद्या ही अमूल्य निधि है। संपत्ति पुण्य की चेरी है। पुण्य क्षीण हुआ और वह अनजाने ही चल देती है। मनुष्य करुण विलाप करता रह जाता है। वह रहती है तो मनुष्य भोग-उपभोग की सामग्री जुटाने व भोगने में व्यस्त रहता है। यदि कारणवश मनचाहा उपभोग न कर सका तो तृष्णा के कारण विकल रहता है। अर्थात् पाप से अनुबन्ध कराने वाली संपत्ति प्रत्येक अवस्था

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में दुखप्रद ही होती है। काश! अपनी संपत्ति भी कभी चल दे तो?

चारुदत्त—(वसंततिलका का मुँह बंद करते हुये) नहीं नहीं संपत्ति क्षीणता की कल्पना भी योग्य नहीं। तुम आनंद पूर्वक रहो।

वसंततिलका—क्या मेरी प्रार्थना व्यर्थ होगी? मैं पति की सच्ची अर्द्धांगिनी न बन सकूँगी? (दुखित हो) प्रभो! किस दुष्कृत्य के फल से मैं वेश्या के घर जन्मी, जिससे सर्व-सामग्री सुलभ होते हुये भी कल्याणकारिणी आध्यात्मिक विद्या प्राप्ति की साध मन में ही समा जायगी।

चारुदत्त—देवी! इतनी प्रबल जिज्ञासा जागृत है तो उसे मैं अवश्यमेव शाँत करूँगा। कल प्रभात से ही तुम्हारा अध्ययन प्रारंभ होगा।

वसंततिलका—इस विशद उपकार के लिये मैं आपकी आजीवन चिर कृतज्ञ रहूँगी।

चारुदत्त—अब तो प्रसन्न हो? (हाथ पकड़कर) उठो विश्राम किया जाय।

(वसंततिलका की दासी सुनयना का प्रवेश).

सुनयना—(झुककर अभिवादन करती हुई) महादेवी! श्रेष्ठी भानुदत्त के गृह से आर्य सोमभद्र पधारे हैं।

चारुदत्त—यह समय मिलने का नहीं। उससे कहो प्रातः काल आये।

सुनयना—(विनयपूर्वक) श्रेष्ठिकुँवर! मैंने उनसे यही निवेदन किया था। परन्तु आवश्यक कार्य होने के कारण वे इसी समय आपसे भेंट करना चाहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंततिलका—सुनयना ! उन्हें यहीं ले आओ।

चारुदत्त—(सुनयना से) ठहरो। (वसंततिलका से) देवी ! रात्रि का प्रथम प्रहर समाप्त हो चुका। निद्रा पलकों में समा जाना चाहती है। मैं विश्राम करूँगा। उसे जाने दो।

वसंततिलका—यह आपका दुराग्रह होगा श्रेष्ठिपुत्र !

चारुदत्त—नहीं भद्रे ! मैं जानता हूँ वह यहाँ से शीघ्र नहीं टलेगा। मुहूर्त्त दो मुहुर्त्त अवश्यमेव जागरण करना पड़ेगा।

वसंततिलका—फिर भी भेंट करना अनिवार्य है। जाओ सुनयना उन्हें ले आओ।

(सुनयना आर्य सोमभद्र को अंतर्कक्ष में भेजकर लौट जाती है। सोमभद्र को देख वसंततिलका भी कक्ष से वाहर हो जाती है)।

सोमभद्र—(झुककर दोनों हाथ अभिवादन की मुद्रा में) नमस्कार कुमार !

चारुदत्त—(रूक्षता से) कहो सोमभद्र ! असमय में तुम कैसे आये ?

सोमभद्र—(दुखित हो) रोग में इतना विवेक नहीं कुमार ! कि वह समय असमय का ध्यान रख सके। माता जी अनायास अस्वस्थ हो गई हैं। उन्होंने आपको बुलाया है।

चारुदत्त—मैं क्या करूँगा जाकर ? किसी कुशल चिकित्सक को बुलाकर दिखला दो। यहाँ आकर व्यर्थ ही समय नष्ट किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोमभद्र—उपचार बराबर हो रहे हैं; किन्तु लाभ दृष्टि-गोचर नहीं हो रहा। गृह स्वामिनी ने घबराकर आपको बुला लाने का आदेश दिया है।

चारुदत्त—तुम देवी मित्रवती से कहना कि वे घबरायें नहीं। धैर्य धारण कर मातुश्री को नियमपूर्वक औषधि देती रहें। ताकि वे शीघ्र स्वास्थ्य लाभ कर सकें।

सोमभद्र—आप भी चलें। स्वामिनी आपकी राह देख रही हैं।

चारुदत्त—सोमभद्र ! आर्या मित्रवती स्वयं विदुषी हैं। वे माता जी की परिचर्या सुचारु रूप से करेंगी। तुम जाओ।

सोमभद्र—अकेला कैसे जाऊँ ? घर जाकर क्या उत्तर दूँगा।

चारुदत्त—सोमभद्र ! कुछ बुद्धि से काम लेना सीखो। मेरी वहाँ क्या आवश्यकता ? मित्रवती से उत्तम सेवा मैं नहीं कर सकूँगा। उन्हें अपने कर्त्तव्य का पूर्ण ज्ञान व ध्यान है। तुम जाओ। रात्रि गहरी हो रही है। मैं विश्राम करूँगा।

सोमभद्र—आप घर चल कर भी विश्राम कर सकते हैं कुमार ! क्या माता जी की सेवा करना आपका धर्म नहीं ?

चारुदत्त—(रोषपूर्वक)मुझे तुम्हारे उपदेश की आवश्यकता नहीं। तुम जाओ। यहाँ पर समय गँवाने की अपेक्षा घर पर जाकर माताजी की सेवा में हाथ बँटाओ।

सोमभद्र—(गला भर आता है) कुमार ! कठोरता की सीमा का भी अतिक्रमण कर गये ! जिस माँ ने आपका लालन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पालन कर बड़ा किया। जिसकी सारी आशायें अपने लाड़ले पुत्र पर ही केन्द्रित हैं; उनके लिये आपकी यह भावना! विचार करें कुमार! आप कितने अनुचित मार्ग पर बढ़ रहे हैं।

चारुदत्त—(कठोर हो आदेशात्मक स्वर से) सोमभद्र! मैं कहता हूँ तुम जाओ!

सोमभद्र—(दृढ़ता पूर्वक) नहीं जाऊँगा। मैं आपको लेने आया हूँ, लेकर ही जाऊँगा। माता जी आप के लिये तरस रही हैं कुमार! (चारुदत्त मौन नतमस्तक हैं, सोमभद्र की आँखें सजल हो जाती हैं) आपके हाथ जोड़ता हूँ आप से बार-बार प्रार्थना है कि आप घर चलें। कदाचित् आपके दर्शन मात्र से वे स्वस्थ हो जायें।

चारुदत्त—पागल हुये हो सोमभद्र! रोग औषधि से ही नष्ट होते हैं। व्यक्ति के दर्शन से नहीं। देखो निद्रा से मेरी पलकें बोझिल हो रही हैं। मैं नहीं जा सकूँगा, तुम जाओ माता जी की उचित परिचर्या करो।

सोमभद्र—कुमार! मुझे आपसे ऐसी आशा नहीं थी। आप विचार करें। अभी नहीं तो कल प्रातः काल निश्चिव ही पधारें।

(सोमभद्र का प्रस्थान)

पटाक्षेप

—❀—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचम दृश्य

समय रात्रि प्रथम प्रहर

पुत्र वियोग से दुखित देवल देवी अस्वस्थ अवस्था में शैया पर लेटी हैं। श्वेत वसना सादगी से परिपूर्ण वधू मित्रवती उनके माथे में शीतलता लाने वाली औषधि को मंद-मंद गति से मल रही है।

देवल देवी—(लेटे हुये ठंडी सांस भरकर) नहीं आया निठुर। वेश्या ने उसकी सारी मति भ्रष्ट कर दी। हे प्रभु ! कहाँ सो गया उसका विवेक !

मित्रवती—(दुखित हृदय से) वेश्या क्या करे माता जी ! जब मनुष्य स्वयं ही पथ भ्रष्ट हो जाये।

देवल देवी—परन्तु चारु का पतन होने में उस दुष्टा वेश्या का ही प्रमुख हाथ है। उस अभागिन ने मेरी बगिया में आग लगा दी। (दुख व रोष मिश्रित स्वर में) मेरी भरी गोद से मेरा प्यारा लाल छीन लिया। (रोते हुये मित्रवती की पीठ पर हाथ फेरते हुये) मेरी मित्रा के सुहाग को लूट लिया।

मित्रवती—शान्त हों माता जी ! विश्राम लें। आपका स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा है। अहर्निशि चिंता कर तन को घुला बैठी हैं।

देवल देवी—क्या करूँ बेटी ! तेरा मुख देखकर छाती छलनी हुई जाती है। इस तरुण वय में कैसा कष्ट ! काश। वेदना बाँटी जा सकती तो मैं ही सब ले लेती। अपनी फूल सी सुकुमार सरला मित्रा को तनिक भी व्यथा न होने देती। किन्तु यह सर्वथा असंभव है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रवती—माता जी ! आप इतनी धैर्यवान होते हुये भी मोह से विह्वल हो गई हैं। यदि सुख दुख बाँटे जा सकते तो सिद्धाँतों की मान्यता कहाँ रहती ? कोई बीज बोये, फल कोई और खाये। ऐसा अन्यथा कैसे हो सकता है ?

देवल देवी—बेटी ! सांसारिक व्यवहार ऐसे ही चलता है। माता-पिता संतान के लिये द्रव्य उपार्जन कर रख जाते हैं। पर ये ठहरे करनी के बीज, जिसने बोये हों, वही भोगता है। हे प्रभु ! मेरे लाल को सुबुद्धि दो।

मित्रवती—इसीलिये तो कहती हूँ कि आप आठों प्रहर चिन्तित न रहा करें।

देवल देवी—तू ठीक कहती है मित्रा ! पर ये कैसे हो सकता है कि तू जिस दुख में घुले; उस दुख का मुझ पर प्रभाव न पड़े। अरे, मैं उठते बैठते तेरी पीड़ा की ही अनुभूति किया करती हूँ। ये सब नैसर्गिक ही होता है। इतना सब होते हुये भी तेरे दुःख को लेशमात्र भी न्यून नहीं कर पा रही हूँ।

मित्रवती—माता जी ! आपके स्नेह - दान ने ही मुझमें धैर्य की अंतः प्रेरणा दी है। आपकी संगति मुझमें नित नवीन साहस का संचार किया करती है।

देवल देवी—तू कितनी अच्छी है बेटी ! अपना वज्र सा दुख भुलाकर मेरी परिचर्या में सदैव व्यस्त रहती है।

मित्रवती—आपकी सेवा करना मेरा परम कर्त्तव्य है माता जी ! इसमें चूककर मैं पवित्र पुण्य का अर्जन किस प्रकार कर सकूँगी। सेवा से ही मेवा मिलता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवल देवी—तेरी धीरता बुद्धिमत्ता कैसे सराहूँ ? मेरे पास उपयुक्त वचन ही शेष नहीं हैं।

मित्रवती—व्यर्थ की सराहना कर मुझे लज्जित न करें मातुश्री ! जीवन संघर्ष में आपका आशीर्वाद ही मुझे विजित बनायेगा।

देवल देवी ऐसा ही हो बेटी ! तुझे पाकर अपार प्रसन्नता है। मैं कृतकृत्य हो गई हूँ। तुझ जैसी वधू से मेरा कुल दीप्त हो उठा है। तेरा मुँह देखकर ही चारु के लिये मेरा मन दुखित रहता है. वरना उस कुल कुपूत निर्मोही का नाम भी नहीं लेती।

मित्रवती—माता जी आज प्रातः स्वाध्याय करते समय सुखी रहने का सूत्र मिल गया बड़ा ही सरल सुरुचिपूर्ण।

देवल देवी—वह क्या है बेटी ! मुझे भी बता।

मित्रवती—आचार्यों का कथन कितना सुन्दर है कि हे प्राणी ! तू अपनी आत्मा को क्रोधादि कषाय भावों से कषैला कर अपने स्वभाव से विमुख न हो। मोह से विकृत स्वभाव ही दुखदाई है। आत्मा से भिन्न जितने भी पदार्थ हैं, उनमें अहं भाव को न जगा। वे पर हैं। कभी अपने नहीं होते। फिर भी तू उन्हें अपना कर व्यर्थ ही क्लेश का अनुभव कर निरंतर अनुतापित होता रहता है।

देवल देवी—कथन सर्वथा सत्य है, पर संसार के प्राणी अनादिकाल से मोह जनित संस्कारों के कारण मूर्च्छित हो रहे हैं। अतएव यह सदुपदेश रूपी अमृत कंठ के नीचे नहीं उतरता। न ही दुःखों की समाप्ति होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रवती—माता जी ! लोकोक्ति है कि संकट में मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियाँ विशेष चैतन्य हो जाती हैं। मन को नियंत्रित कर यदि उपयोग स्वभाव में लगाया जाय तो वे चौमुखी प्रगति कर कीचड़ में कमल उत्पन्न कर देती हैं।

देवल देवी—कुछ भी कह मित्रा ! इस समय मेरी बुद्धि कुंठित हो गई है। अनजाने ही मैं तेरे सुख में बाधक बन गई। और उस दुष्टा ने सर्वस्व ही हरण कर लिया।

मित्रवती—माता जी ! आप अपने हृदय से यह काँटा निकाल दें कि आपके कारण अनर्थ हुआ है। यह मात्र मन का भ्रम है। रही उस नगरवधू की बात सो वेश्यावृत्ति ही उसकी आजीविका है। निकृष्ट काय से निधि संग्रह करने वाली सतीत्व की पवित्रता या पति वियोग के दुख की अनुभूति कैसे कर सकती है ?

देवल देवी—आखिर है तो वह भी नारी। संतान को जन्म उसने भी दिया है।

मित्रवती—माता जी ! आप इतनी समझदार होकर भी कैसी बहकी-बहकी सी बातें कर रही हैं। संतान को जन्म देकर भी उसके हृदय में ममता कहाँ जागी ? वेश्याओं को अनचाही संतान उत्पन्न हो जाती हैं। संतानोत्पत्ति तो उनकी भोगेषणा में बाधक ही बनती है।

देवल देवी—मित्रा ! तू परीक्षा में खरी उतरी। तेरा धैर्य देखकर मुझे सीता अंजना सी सतियों की सुधि हो आती है। उन्हीं सतियों की श्रेणी में तेरा स्थान भी सुरक्षित है।

मित्रवती—ऐसी भाग्यशालिनी कहाँ हूँ माता जी ! उनके चरण रज की कणिका भी बन सकूँ ऐसी मुझ में सामर्थ्य नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवल देवी—अपने-अपने समय के देशकाल को देखते हुये मैं मिथ्या नहीं कह रही हूँ। न जाने उस अभागिन ने कैसी मोहिनी पिलाई कि चारु घरबार, माँ-बाप, पत्नी, लोक-लाज, धर्म-कर्म, सब भुला बैठा।

मित्रवती—इसे दुर्भाग्य ही कहा जायगा माता जी ! और कहें भी क्या !

(श्रेष्ठि भानुदत्त का प्रवेश। वे पिछले वाक्य सुन लेते हैं।)

भानुदत्त—(दुख भरे स्वर में) अपने हाथों अपने पैर काटकर उसे दुर्भाग्य नहीं कहा जाता बेटी !

देवल देवी—आप यथार्थ कह रहे हैं नाथ ! जाने किस बुरे मुहूर्त्त में मैंने रुद्रदत्त जी को बुलाया। उनका आगमन ही हमें महान कष्टप्रद हो गया। इससे तो उत्तम यही था कि वह घर पर रहकर आत्म कल्याण में लीन रहता।

भानुदत्त—साथ ही जब चाहो तब देख सकते थे। सांसारिक भोगों से उदास होते हुये भी हम लोगों की सेवा स्वास्थ्य का पूर्ण रूपेण ध्य न रखता था। कर्त्तव्य पालन में वह दृढ़ था। पर तुमने उसे नरक में जाने को विवश कर दिया।

देवल देवी—आह ! ऐसा न कहें स्वामिन् ! मैं क्या जानती थी कि रुद्रदत्त जी चारु को मार्ग पर लाने के लिये यह निकृष्ट कुचक्र रचेंगे। मेरा पुत्र घर में रहकर ही क्या बुरा था। कभी उसने मेरी आज्ञा नहीं टाली। उस जैसा सज्जन पुत्र पाकर मैं अपने को धन्य समझती थी।

भानुदत्त—और अब तुम्हारी गंभीर अवस्था जानकर भी वह नहीं आया। नाश हो इन गणिकाओं का। इन्होंने न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाने कितनी गृहस्थियाँ नष्ट कर दीं। कितने माँ-बापों को तड़पाया। कितनी सुहागिनियों को आँखें भर-भर रुलाया।

मित्रवती--तात ! कृपया मन अशांत न करें। सृष्टि का यह अनादि निधन नियम है कि कोई सुखी, कोई दुखी। पूर्वोपार्जित अशुभ कर्म ही प्राणियों के ऐन्द्रिय सुखों में व्यवधान डाला करते हैं। हमें अपने विभावों से लड़ना होगा। इन पर विजय पाकर ही कभी नष्ट न होने वाला सच्चा आत्मसुख प्राप्त कर सकेंगे।

भानुदत्त—बेटी ! ये श्रमण मार्ग है। हम गृहस्थाश्रम में रहकर इसे नहीं अपना सकते। हमें गृहस्थोचित कार्यों के करने की ही क्षमता का अभ्यास करना चाहिये।

देवल देवी—हाँ पुरुषार्थ करना अपना कर्त्तव्य है। ·······सतत अध्यात्म रस में निमग्न रहने वाला धर्म भीरु सन्मार्गी पथिक चारु कैसे एकदम विमुख हो गया। वह भी एक संध्या में। आश्चर्य ! घोर आश्चर्य !

मित्रवती—भविष्य सदा ही अज्ञात रहता है माता जी ! सचमुच इसकी कल्पना भी नहीं थी कि माँ की अगाध ममता काँच की तरह चूर-चूर होकर बिलकुल नष्ट हो जायगी।

भानुदत्त—देखो न, दुर्व्यसन में इतना फँसा कि माँ की अस्वस्थता का समाचार जानकर भी वह घड़ी भर के लिये उस कीच से न निकल सका। क्या कहूँ उस दुर्बुद्धि को ?

मित्रवती—अब तो हमें धैर्य का ही सहारा लेना होगा तात। अन्य उपाय भी निःशेष हो गये हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भानुदत्त—नहीं बेटी ! कोई न कोई उपाय अवश्य निकलेगा। मैं प्रयत्न करूँगा। (देवल देवी से, जैसे अनायास कोई बात याद आ जाती है) कहो, ये कैसा रहेगा कि मैं अपनी बीमारी या मृत्यु का संवाद भेज दूँ ?

मित्रवती—तात ! कृपया ऐसे अमंगलीक वचन न कहें। दुःख होता है।

भानुदत्त—(फीकी हँसी हँसकर) पगली ! क्या कथन मात्र से मैं मर गया। ऊँह""""यह तो एक दाँव है। कदाचित् हम सफल हो जायें।

मित्रवती—रात्रि गहरा रही है तात ! अब आप शयन करें। माता जी भी लगातार तीन दिनों से बिलकुल भी नहीं सो सकी हैं। अतएव अस्वस्थता अधिक बढ़ गई है। यदि कुछ समय भी निद्रा आ जाये तो थके हुये मानस को शांति लाभ हो। अच्छा हो हम सब मंगल स्वरूप प्रभु का स्मरण कर विश्राम करें।

देवल देवी—आर्य श्रेष्ठ ! मित्रवती हम लोगों का बहुत ध्यान रखती है। अपने कार्यों, सद्गुणों से हमें निहाल कर दिया है।

भानुदत्त—पुण्योदय से बेटे का अभाव बंधू पूरा कर रही है। अच्छा तुम दोनों आराम करो। मैं भी जाता हूँ।

पटाक्षेप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंक तृतीय

दृश्य प्रथम

समय—मध्याह्न

वीरांगना वसंतमाला का प्रासाद,

चारुदत्त वसंततिलका अंतर्कक्ष में बैठे वार्त्तालाप कर रहे हैं। तख्त पर कालीन बिछा है। शिरोधान रखे हुये हैं। दोनों शिरोधान के सहारे अध लेटे से प्रसन्न मुद्रा में बातें कर रहे हैं।

वसंततिलका—आर्य श्रेष्ठि ! आपसे मैं कितने बार अनुरोध कर चुकी हूँ कि आप अपने माता-पिता के दर्शन अवश्य कर आवें। आप हैं कि जाने का नाम ही नहीं लेते।

चारुदत्त—देवी ! इस विषय में मैं कुछ कहना सुनना नहीं चाहता और तुम हो कि जब तब यही वार्त्ता छेड़ देती हो।

वसंततिलका—नहीं कहने सुनने का कारण ? (चारुदत्त मौन हैं)······मैं जानना चाहती हूँ कि आप इतने कतराते क्यों हैं ?

चारुदत्त—(उदास हो) तुम्हें न जाने क्यों इतनी रुचि है इस विषय से। यदि मुझसे ऊबने लगी हो तो स्पष्ट कहो मैं चला जाऊँ।

वसंततिलका—ऐसा न कहें स्वामिन ! मैं आपको छोड़कर एक क्षण भी नहीं रह सकूँगी। आप मेरे शिक्षा गुरु हैं। मुझे पढ़ाने में आपने अथक परिश्रम किया है। आपके ही प्रसाद से मैं कुछ साक्षरा होकर अपने हिताहित का विचार कर पाई हूँ। मेरी माँ ने मुझे आजीविका हेतु निधि-संग्रह करने के लिये ही कुछ व्यावहारिक छल-विद्या अथवा नृत्य-संगीत-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कला सिखलाई। पर आपने मेरे आंतरिक नेत्र खोल दिये। अध्यात्मिकता ने मेरी रास रंग में रची पगी आत्मा को झकझोर दिया है

चारुदत्त—भद्रे! तुमने जिस लगन से पढ़ने में रुचि दर्शाई; पढ़ाने में मेरा उत्साह उतना ही जागा। साथ ही बुद्धि की तीक्ष्णता के कारण शीघ्रता से इतना अध्ययन कर सकी हो। तुम्हारा श्रम सफल हुआ।

वसंततिलका—इसका श्रेय भी आपको है। आप जैसे कुशाग्र मेधावी विद्वान के सत्संग में रहकर ही मुझे यह लाभ प्राप्त हो सका। अन्यथा यहाँ का वातावरण तो एकदम इससे विपरीत है।

चारुदत्त—इसके लिये मेरा भी धन्यवाद स्वीकार करो देवी! तुम्हारी अध्ययन की उत्कंठा ने मुझे पुनः सन्मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित किया है। अपना संयमित जीवन बनाने हेतु जो ज्ञान बाल्यकाल से अर्जित व संचित कर रहा था; उसे भूलकर मैं स्वयं का अस्तित्व ही खो चुका था, तुमने उसका भान कराया है महादेवी!

वसंततिलका—(हँसकर) अच्छा तो मैं भी आपकी गुरु हूँ। अर्थात् हम दोनों का परस्पर गुरु शिष्य का दोहरा संबंध है। (आकाश की ओर देखकर) जय हो प्रभु तुम्हारी जो पुण्योदय से ऐसे सज्जन पतिदेव प्राप्त हुये।

चारुदत्त—(साश्चर्य) पतिदेव!

वसंततिलका—(गंभीरतापूर्वक) विनोद में न लें श्रेष्ठिन्! आपने जिस दिन पतिव्रता सतियों के मार्मिक आख्यानों द्वारा भारतीय नारी की संस्कृति से परिचय कराया;

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी दिन मैंने परम पिता परमात्मा की साक्षी ले प्रतिज्ञा की कि इस जीवन के स्वामी एकमात्र आप हैं। अन्य सभी पिता और भ्राता तुल्य हैं। मेरा कौमार्य आपके अतिरिक्त किसी ने भंग नहीं किया।

चारुदत्त—सच! तो तुम्हारा नारी जीवन सार्थक है।

वसंततिलका—आपने मेरा पथ प्रशस्त किया है आर्य-पुत्र!.........अरे हम लोग अपने विषय से भटक गये स्वामिन्! (आग्रह पूर्वक) बताइये न आखिर आप इस विषय पर मौन क्यों साध लेते हैं?

चारुदत्त—लो मैंने सोचा प्रसंग बदल गया; पर तुम घूम फिर कर पुनः उसी विषय पर आ गईं।

वसंततिलका—उत्सुकता जो जागी है, भूल कैसे जाऊँ?

चारुदत्त—तब फिर समाधान करना ही होगा। सच बात यह है भद्रे! कि चाहे तुम कितनी अच्छी होओ, किन्तु संसार की दृष्टि में वेश्या ही कहलाओगी। यहाँ रहकर मैं भ्रष्ट हो गया समझो। अब तुम्हीं बताओ माता-पिता के पास मैं किस मुँह को लेकर जाऊँ? मेरे सामने यह विकट समस्या हो गई है। कहीं वे मेरा घर से निष्कासन न कर दें।

वसंततिलका—आपके विचार सामयिक होते हुये भी पूर्णतः यथार्थ नहीं कहे जा सकते। आर्य सोमभद्र का बार बार आना इस बात का द्योतक है।

चारुदत्त—हो सकता है मुझे यहाँ से पृथक कर कोई दंड निर्धारित करें। और तुमसे सदा के लिये संबंध विच्छेद हो जाये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंततिलका—संबंध विच्छेद हेतु मैं प्रस्तुत नहीं हूँ श्रेष्ठिसुत! आप जहाँ जायँगे मैं छाया की भाँति आपके साथ रहूँगी। यहाँ मेरा सती व्रत नष्ट हो जायगा।

चारुदत्त—तब मेरा तुम कहना मानो और इस विषय पर चर्चा ही समाप्त कर दो।

वसंततिलका—यह संभव नहीं। माता पिता के अतिरिक्त आपकी पत्नी मेरी भगिनी मित्रवती भी आपकी वाट जोहा करती होंगी। मैं कहती हूँ आप एक बार जाकर तो देखें। आप इकलौते पुत्र हैं। क्या उनकी ममता आप पर न होगी?

चारुदत्त—(उदास हो, दृढ़ता से) होगी नहीं, है। यों तो सभी का संतान पर अगाध स्नेह होता है; परंतु मुझे अपने माता-पिता का विशेष प्यार मिला है। उसमें एक राज है महादेवी!

वसंततिलका—आपत्ति न हो तो मुझे भी बतलायें।

चारुदत्त—प्रिय-जनों से भला क्या अलगाव?.......... मेरे पिताश्री समाज में अग्रणी एवं करोड़ों दीनारों के स्वामी हैं। सब प्रकार से सुखी होकर भी संतान का अभाव उनके मानस को प्रति समय कुरेदने के लिये पर्याप्त था। बहुत समय व्यतीत होने पर जब वे निराश हो गये, तभी अनायास मेरा जन्म हुआ। उन्होंने मेरी प्रत्येक इच्छा की पूर्ति की है।

वसंततिलका—तभी उनकी इच्छा के विरुद्ध यहाँ रहने पर भी आपको मनचाही द्रव्य भेजते रहते हैं। तिसपर भी आप उनके प्रेम की उपेक्षा कर बैठे?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारुदत्त – उपेक्षा बिलकुल भी नहीं की भद्रे ! मेरी माँ बहुत ही अच्छी हैं। पर क्या करूँ ? अपने ही कृत्य से लज्जित हूँ।

वसंततिलका—उसके लिये क्षमायाचना कर लेना यथेष्ट होगा प्राणप्रिय ! मुझे विश्वास है कि वे आपके साथ कठोर व्यवहार नहीं करेंगी।

चारुदत्त—तुम नहीं समझतीं देवी ! मानव सामाजिक प्राणी है। समाज के बिना उसका अस्तित्व शून्य है। मैं निश्चय ही समाज से बहिष्कृत हो चुका हूँ। अतएव कठोर व्यवहार का प्रश्न ही नहीं उठता।

वसंततिलका—मैं उनके पैर पकड़ लूँगी। बार बार क्षमा याचना कर उनका हृदय परिवर्त्तित करने में समर्थ हो सकूँगी। ऐसा मेरा विश्वास है।

चारुदत्त—(घबराकर आश्चर्य चकित हो) उफ ! तो क्या तुम भी घर चलना चाहती हो ? यह बिलकुल असंभव है। कदाचित् सूर्य पूर्व दिशा छोड़ पश्चिम में उदित होने लगे; परंतु गणिका को गृहस्थाश्रम में स्वीकार करना अत्यंत असंभव है।

वसंततिलका—प्रयत्न करने में हानि ?

चारुदत्त—(एकदम खड़े होकर दुःख व ग्लानि पूर्वक) नहीं नहीं मैं इस प्रासाद की देहलीज के बाहर पैर नहीं रख सकता।……आह ! मैं अपने परिचितों से कैसे आँख मिला सकूँगा। दुनियाँ क्या कहेगी !

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(प्रस्थान)

वसंततिलका—(स्वगत) भगवन् ! इस नरक से मेरा कैसे उद्धार हो ? मैं कैसे उनके विचारों को बदलूँ ?

पटाक्षेप

—❀—

दृश्य द्वितीय

समय रात्रि प्रथम प्रहर,

वसंतमाला का प्रासाद,

विदेशी दो नवयुवक वसंतमाला के अंतर्कक्ष में बैठे हैं। कक्ष की सजावट पूर्वोक्त पद्धति से है। एक ओर मानवाकार दर्पण रखा हुआ है। वसंतमाला सुखासन पर आसीन है। बीच में सुन्दर काष्ठ चौकी रखी हुई है। एक ओर पीठिकाओं पर दोनों मित्र बैठ जाते हैं।

वसंतमाला—आर्य अतिथिगण ! अपना परिचय देकर दासी को कृतार्थ करें। अनुकंपा होगी।

शशांक—देवी ! हमारा सार्थ उज्जैनी से विविध सामग्रियों का क्रय विक्रय करता हुआ रत्नद्वीप जा रहा है। सार्थपति धरणीधर का मैं ज्येष्ठ पुत्र हूँ। मेरा नाम शशांक है। आप हैं मेरे अनन्य मित्र श्री चक्रधर।

वसंतमाला—(सहर्ष) हमारी नगरी में आपका सहर्ष स्वागत है। हमारे अहोभाग्य ! जो आपके दर्शन पाकर कृतकृत्य हुई। (जोर से पुकार कर) शुभा !

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुभा—आज्ञा महादेवी !

वसंतमाला—(आदेशात्मक स्वर में) अतिथियों के लिये वारुणी एवं तांबूल आदि का प्रबंध करो।

शुभा—जी महादेवी !

चक्रधर—वारुणी हमें इष्ट नहीं है भद्रे ! हम केवल देवी वसंततिलका से भेंट करना चाहते हैं। उन्हें बुलाने का कष्ट करें।

वसंतमाला—(उदास हो) उन्हें भी बुला देती हूँ। आप निश्चिन्त होकर बैठें। राह की थकावट निकाल तनिक देर विश्रांति ले लें।

शशांक—हमें शीघ्र लौटना है देवी ! रात्रि का प्रथम प्रहर बीत रहा है। हम पिताश्री से छुपकर यहाँ आये हैं।

वसंतमाला—किन्तु.........वे.........

शशांक—विलंब न करें। (कोष से निकाल कर) लीजिये ये पाँच शत स्वर्ण मुद्रायें भेंट में।

वसंतमाला—नहीं नहीं इसकी क्या आवश्यकता ? मैं स्वयं बुलाकर लाती हूँ। (भीतर जाती है)

शशांक—(मुस्कुराकर) देखा मित्र ! वसंतमाला ने पहिले कैसी आनाकानी की; किन्तु पाँच सौ स्वर्ण मुद्रायें देख कर मन ललचा गया।

चक्रधर—ये बुलाने अवश्य गई हैं, पर असफल होकर ही लौटेंगी।

शशांक—किन्तु मित्र ! मैं एक सहस्र स्वर्ण मुद्रायें तत्काल न्योछावर करने को प्रस्तुत हूँ। स्वर्ण की जगमगाहट के संन्मुख इनका स्थिर रहना असंभव है।

८२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चक्रधर—जहाँ तक मुझे ज्ञात हुआ है कि इसमें एक रहस्य है।

शशांक—(साश्चर्य) रहस्य है ?

चक्रधर—हाँ, देवी वसंततिलका श्रेष्ठी चारुदत्त पर इतनी मुग्ध हैं कि उनका किसी अन्य पुरुष के समक्ष आना अथवा संभाषण करना भी उनकी रुचि के प्रतिकूल है।

शशांक—(अत्यंत आश्चर्य से) नगर - नारी की यह अनौखी प्रीति ! अति विचित्र ! (अस्वीकारात्मक सिर हिलाते हुये) नहीं नहीं मित्र ! तुम्हें भ्रम हुआ है। इन पण्य-स्त्रियों को प्रीति से क्या प्रयोजन ?

चक्रधर—सचमुच ऋस्वाभाविक होते हुये भी यह सत्य है मित्र ! और फिर 'हाथ कंगन को आरसी क्या' अभी प्रमाण लो।

शशांक—मित्र ! तुमने मुझे पहिले नहीं बताया।

चक्रधर—चर्चा....(वसंतमाला आ जाती है। वह उदास है। उसकी आहट पाते ही चक्रधर चुप हो जाता है)।

शशांक—कितनी देर प्रतीक्षा करनी होगी ?

वसंतमाला—आज वे अस्वस्थ हैं श्रेष्ठिन् ! मिलने में असमर्थ है। उनकी ओर से मैं क्षमायाचना करती हूँ।

शशांक—इस प्रकार छल की क्या आवश्यकता ? एक सहस्र स्वर्ण मुद्रायें रखें (पुनः कोप से निकाल स्वर्ण मुद्रायें चौकी पर रख देता है) कृपया समय नष्ट न कर शीघ्र ही भेंट करवा दें।

वसंतमाला—(अत्यंत उदास हो) ये मुद्रायें आप रखें श्रेष्ठिकुमार ! मैं आपकी अभिलाषा पूर्ति में साधक न बन सकूँगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शशिधर—बाधक बनने का कारण ?

वसंतमाला—न न न न मैं भला बाधक क्यों ? आप मुझे गलत न समझें।

शशांक—तब क्या कोई अन्य रहस्य है ?

वसंतमाला—(हकलाते हुये) र ह्य अ रहस्य ...... कुछ नहीं है। आप फिर कभी पधारें।

चक्रधर—हम लोगों ने उनकी प्रशंसा बहुत दिनों से सुन रखी थी। तभी से भेंट करने की प्रबल आकांक्षा थी। परन्तु आप हमें निराश कर रही हैं।

वसंतमाला—मैं विवश हूँ श्रेष्ठिकुमार !

शशांक—(जाने के लिये उद्यत होते हैं) तब फिर चलें मित्र ! विलंब हो रहा है।

वसंतमाला—ठहरिये, बातों ही बातों में आपका स्वागत रह गया। एक एक प्याली सुरा तो ढालिये।

शशांक - देवी ! सुरा-सुन्दरी की अनुपम जोड़ी है। सुन्दरी के अभाव में सुरा का क्या आनन्द ?

(वसंतमाला दुखी उदास हो मुख फेर लेती है।
मित्रद्वय चले जाते हैं)।

वसंतमाला—(सुखासन पर निढाल सी हो लेट जाती है। स्वगत) हुँह ...... आज तिलका के कारण बड़ा अपमान सहना पड़ा। एक सहस्र स्वर्ण मुद्रायें ! उसीके कारण हाथ से निकल गईं। कितने श्रेष्ठिपुत्र उसके लिये झखमारते रहे; परंतु सबको टका सा उत्तर देकर हतोत्साहित कर दिया। वृद्धावस्था मुझ पर अपना आधिपत्य जमा रही है। क्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सचमुच मैं सुन्दर नहीं हूँ? (उठकर दर्पण में अपना मुख निहार कर)......इतनी असुन्दर भी नहीं कि किसी पुरुष को संतुष्ट न कर सकूँ। पर ये पुरुष नित नई कलियाँ चाहते हैं। स्वार्थी......

(शुभा का पानदान व वारुणी लिये प्रवेश)

शुभा—अरे! वे युवक चले गये महादेवी!

वसंतमाला—(ठंडी साँस भर कर) हाँ......चले गये।

शुभा—आपकी अवज्ञा करके देवी वसंततिलका उचित नहीं करतीं।

(वसंततिलका वीणा बजा कर भजन गा रही हैं। बाहर इन दोनों के पास तक आवाज आ रही है) नेपथ्य से वसंततिलका—

काहे न लेत उबार
प्रभू जी मोहे काहे न लेत उबार।

वसंतमाला—बस जब देखो तब भजन। जैसे वैरागिन हो।

शुभा—वेश्या और वैराग्य में परस्पर अत्यन्त विरोध है महादेवी!

वसंतमाला—इसीलिये मुझे अब चिंता होने लगी है शुभा! तुझे तो याद होगा कि जब तिलका बालिका थी; तब भी वह किसी पुरुष के सम्मुख नृत्य हेतु नहीं आई।

शुभा—हाँ, आप उन्हें कितने प्रलोभन देती थीं, समझाती थीं, डाँटती थीं, पर वे बचपन से ही हठी प्रकृति की थीं। अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के कारण संगीत-कला में जैसी वे शीघ्र निष्णात हो गईं वैसा उन्होंने अपने कला चातुर्य का प्रदर्शन कर पुरुष समाज को रिझाने का प्रयत्न नहीं किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नेपथ्य से वसंततिलका—

कब से तुमसे विनती करत हों
बेगि करो भवपार।
प्रभु जी मोहे काहे न लेत उबार॥
(दोनों सुनकर रस लेती हैं)

वसंतमाला—शुभा! तिलका का कंठ कितना मधुर एवं स्वर कैसे सधे हुये हैं।

शुभा—हाँ महादेवी! ऐसा लगता है जैसे कोई किन्नरी अपने संगीत से कर्ण कुहरों में सुधा घोल रही हो।

वसंतमाला—(उदास हो) जंगल में मयूर नाचा, किसने देखा, क्या लाभ हुआ? पहिले मैं सोचती थी कि अभी बालिका है। अंग-अंग में अनंग जागृत होते ही स्वयमेव समझ आ जायगी। परन्तु पूर्ण युवती होने पर भी स्वभाव में कोई अन्तर नहीं आया। उसने मेरी आशाओं पर तुषारापात कर दिया शुभा!

शुभा—महादेवी! वे लज्जाशीला कुलवधू की नाईं आर्य चारुदत्त पर ही न्योछावर हो चुकी हैं।

वसंतमाला—किन्तु शुभे! विलासिनी कहीं पतिव्रता बनी हैं? हम नगर वधुओं का जीवन सर्ववल्लभा बनकर ही श्रेष्ठता के शिखर पर पहुँचता है। नित नवीन भ्रमरों का गुञ्जन ही हमें प्रिय है।

शुभा—सच है महादेवी! जितने अधिक श्रीमान् जन आवेंगे; उतना ही भंडार भरेगा। यदि आपने सर्व आगंतुकों को सन्तुष्ट न किया होता तो ये भव्य प्रासाद अपना मस्तक ऊँचा न किये होता। वारवनिताओं में सर्वोपरि आपका ही प्रमुख स्थान है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंतमाला—वे भी कैसे दिन थे शुभा ! प्रेमियों की टोली नित नवीन उपहार लिये ड्योढ़ी पर डटी रहती थी। मुझे भेंट करने का अवकाश भी नहीं मिल पाता था। तिलका मुझसे कहीं अधिक सुन्दर लगती है।

शुभा—अपने यहाँ आने वाले अतिथि बचपन में उन्हें देखकर कहा करते थे कि यह बालिका आपके यश में चार चाँद लगा देगी।

वसंतमाला—और वह है कि चारुदत्त की ही माला फेरा करती है। बड़े बड़े श्रेष्ठिपुत्र दूर दूर से आकर लौट जाते हैं। किसी को दर्शन देकर भी कृतार्थ नहीं करती। न जाने उसकी कौन सी हानि होती है। संकोच व लज्जा हमारे समाज का घोर कलंक है।

शुभा—हां महादेवी ! आपकी परम्परा चलना कठिन दिखता है।

वसंतमाला—कठिन ! अरी असम्भव कह असम्भव। यह तो स्पष्ट ही दिख रहा है। वह कभी बाहर निकलती ही नहीं।

शुभा—सौगंध खाकर कहती हूँ महादेवी ! यदि वे संध्या समाज में तनिक भी समय दें तो आगंतुकों को स्थान न रहे बैठने के लिये।

वसंतमाला—पर आये तब न ! उसने तो जैसे शपथ ले ली है नहीं आने की।

शुभा—मैं समझाने का प्रयत्न कर देखूँ ?

वसंतमाला—व्यर्थ है। कोई दूसरा मार्ग निकालना होगा।

पटाक्षेप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीय दृश्य

प्रातःकाल प्रथम प्रहर

श्रेष्ठी चारुदत्त अभी-अभी शैया का परित्याग कर प्रभात की मनोरम वायु सेवनार्थ उद्यान में टहल रहे हैं। वृद्ध सेवक आर्य सोमभद्र आते हुये दृष्टिगत होते हैं। सोमभद्र उदास खिन्न मन हैं। उनके नयन पक्ष्मों से आँसुओं की बूँदे ढुलक पड़ती हैं। चारुदत्त हतप्रभ हो जाते हैं। वे सेवक का हाथ पकड़कर पास में ही पड़ी शिला पर अपने साथ बैठा लेते हैं।

चारुदत्त—(स्नेह पूर्ण स्वर से) आओ सोमभद्र! बैठो भाई, क्या बात है? तुम्हारी आँखों से आँसू नहीं थमते।

(सोमभद्र अपने उत्तरीय से निरंतर आँसू पोंछते जाते हैं। आँखों से सावन भादों की झड़ी लगी है। बोलने का प्रयत्न करते हैं; किन्तु हिचकियों के मारे बोल नहीं निकलते।) कुछ समय पश्चात्—

चारुदत्त - शाँत होओ सोमभद्र! मुझसे तुम्हारा रुदन नहीं देखा जाता। बताओ तो क्या बात हुई?

सोमभद्र—(कठिनता से शाँत होकर) कुमार ! मैंने आपको चंद दिन पूर्व स्वामी की अस्वस्थता के समाचार दिये थे, पर आप नहीं आये। अब वे इस संसार में नहीं हैं।

चारुदत्त—(दुःख से चीखते हुये) चल बसे तात! आह! मुझ अभागे ने उनके दर्शन भी नहीं किये। मैं कुल कुपूत निकला। जन्मते ही मुझे काल ने अपना ग्रास क्यों न बना लिया? कुल की लाज तो न जाती। (शनैः शनैः आँखों से आँसू टपकते रहते हैं)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोमभद्र—बड़ा बुरा हुआ कुमार ! घर का एकमात्र संरक्षक चल बसा। वे आपके लिये तरसते रहे।

चारुदत्त—(अन्यमनस्क हो) क्या करूँ ? कुछ ऐसी विवशता है मेरे समक्ष।.........हा ! तात !

सोमभद्र—अपने ही घर जाने में कौन सी बाधा है कुमार ! (मुँह बनाकर) मेरी समझ से परे है। माता जी के दुःख का पारावार नहीं है।

चारुदत्त—तुम सच कह रहे हो सोमभद्र ! जाओ, उन्हें धैर्य बँधाओ। क्या किया जाय ? महाकाल से सब हार मान गये। क्या राजा क्या रंक, ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी सब उसी राह के राही हैं।

सोमभद्र—माता जी विलख रही हैं। उन पर सबके समझाने का कोई प्रभाव नहीं हो रहा। और तो और अभी तक गृह स्वामिनी ने सास श्वसुर को आपका अभाव नहीं खटकने दिया; किन्तु आज स्वामी की मृत्यु से वे भी अधीर हो उठी हैं।

चारुदत्त—(दुखित हृदय से) सोमभद्र ! तात के अभाव से परिवार पर कठोर वज्रपात हुआ है। मैंने उन्हें किसी प्रकार का सुख नहीं दिया। उनकी सेवा सुश्रूषा नहीं की। धिक्कार है मुझे। मैंने पुत्र का कर्त्तव्य तनिक भी पालन नहीं किया। मैं अधम हूँ। तात !.........तात !.................

सोमभद्र—धैर्य धारण करें कुमार ! जो होना था सो हो गया। कदाचित् भाग्य को यही स्वीकार था। सचमुच मृत्यु के समक्ष सब मात खा गये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारुदत्त—(आह भरकर) अब क्या होगा सोमभद्र ! हा तात ! तुम कहाँ चले गये।

सोमभद्र—धैर्य धरो कुमार ! माता-पिता सदैव किसी के जीवित नहीं रहते। धैर्य ही अपना संबल है आप तो स्वयं ज्ञानवान हैं। मैं भला क्या समझाऊँ ?

चारुदत्त—सृष्टि का यह निश्चित नियम है; यह जानते हुये भी हृदय में ममता की लहरें उठ-उठकर विवेक को आंदोलित कर देती हैं सोमभद्र ! मैं क्या बड़े-बड़े विवेकशील साधक भी कभी-कभी इसके भँवर में फँस जाते हैं। मेरा मन भी बड़ा व्याकुल हो रहा है।

सोमभद्र - (दुखित हो संवेदनात्मक स्वर में) सो तो होगा ही कुमार ! कौन ऐसा कठोर हृदय पुत्र होगा जिसे पिता का वियोग संतप्त न करता हो। पर अब कोई उपाय ही नहीं। केवल दुःख ही हाथ लगेगा।

चारुदत्त—यहाँ मनुष्य निरुपाय है। सारे उपाय धरे रह जाते हैं। सांसरिक विशाल सामग्री भी न काम आती है न साथ जाती है।

सोमभद्र—(आह ले) आपका कथन उचित है कुमार ! ....अब शीघ्र चलें दाह संस्कार करना है।

चारुदत्त—(कुछेक क्षण रुककर) मेरी क्या आवश्यकता ? दाह संस्कार तुम भी कर सकते हो।

सोमभद्र—(स्तब्ध हो) आप कैसी बातें कर रहे हैं ? आपके होते हुये पूज्य पिता का दाह संस्कार करना क्या मुझे शोभा देगा ? मैं ठहरा घर का भृत्य।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारुदत्त—क्यों क्या हुआ ? तुम तो घर में आत्मीय भांति रहे हो।

सोमभद्र—पर दुनिया मुझे सेवक के रूप में ही जानती है।

चारुदत्त—दुनिया से क्या प्रयोजन ?

सोमभद्र—भले ही प्रयोजन न हो; परन्तु विचारिये तो सही पुत्र की उपस्थिति में दाह संस्कार सेवक करे ?

चारुदत्त—विवाद करने का तुम्हारा स्वभाव ही हो गया है सोमभद्र ! तुम मेरी बात नहीं मानते।

सोमभद्र—आपकी आज्ञा सिर माथे पर है कुमार ! पर आप अनुचित जो कह रहे हैं। मैं आपका पुराना सेवक हूँ। घर की लाज जावे, आप ही बताइये मैं कैसे सहन कर सकता हूँ ?

चारुदत्त—ये सब कोरी रूढ़ियाँ हैं। कोई भी दाह दे, इससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं।

सोमभद्र—यथार्थ है। फिर भी गृहस्थाश्रमियों को लोकरूढ़ियाँ भी माननी पड़ती हैं। (उठकर खड़ा हो जाता है) शीघ्र चलें विलंब हो रहा है।

चारुदत्त—(अस्वीकारात्मक मुद्रा में मौन हैं)

सोमभद्र—(रोष पूर्वक) क्या आप अंतिम बार भी अपने पिताश्री के दर्शन नहीं करना चाहते ? व्याकुल माँ के हृदय को क्षणिक शीतलता भी प्रदान नहीं कर सकते। रोती पत्नी को सान्त्वना देने के लिये आपके पास दो बोल भी अवशिष्ट नहीं ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारुदत्त—(दुखित हो) बस करो सोमभद्र ! बस करो। मैं स्वयं ही क्या कम दुखी हूँ; जो तुम जले पर नमक छिड़क रहे हो।

सोमभद्र—तब फिर क्यों नहीं घर चलते ?

चारुदत्त—(आत्मग्लानि से भरकर) तुम्हीं बताओ सोमभद्र ! इस कलंकित मुख को ले कहाँ जाऊँ ?

सोमभद्र—उँह, इससे क्या होता है ? चार दिन चर्चा करके सब शांत हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त आप नारी तो हैं नहीं। पुरुष हैं, पुरुष भ्रमर की तरह निर्बंध है।

चारुदत्त—ऐसा नहीं है सोमभद्र ! नियति दंड देते समय नर-नारी को भिन्न नहीं देखती।

सोमभद्र—आपकी बात मान लूँ, तब मार्ग और भी अधिक स्पष्ट है। 'बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेहु'। अंतरंग के सच्चे पश्चात्ताप से आत्मा का कलुष अविलंब धुल जाता है।

चारुदत्त—मैंने कहा न कि तुम्हारी आदत ही विवाद की हो गई है।

सोमभद्र—अर्थात् आप नहीं चलेंगे ? (कठोरतापूर्वक) कुमार ! मैं अंतिम चेतावनी देता हूँ कि इस बार आप घर न चल कर जघन्यतम अपराध कर रहे हैं। कभी आपको सुख चैन न मिल सकेगा। कर्त्तव्य पालन न करने की शल्य जीवन भर चुभकर अंतस्तल को छलनी बना देगी। चल रहे हैं अथवा मैं जाऊँ ?

चारुदत्त—(मौन हैं)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोमभद्र—अपने प्रिय परिवार के प्रति यह कठोरता देखकर मुझे आपकी बुद्धि पर तरस आता है कुमार ! पिता के महामौन से भी आप सत्पथ पर न लौट सके। (शीघ्रता से प्रस्थान)।

चारुदत्त—(विह्वल हो) हा तात ! (कहते हुये रो पड़ते हैं और शोकातुर हो जमीन पर बैठकर शिला पर सिर रख अधीर हो बिलख उठते हैं)।

पटाक्षेप

——❀——

चतुर्थ दृश्य

श्रेष्ठी भानुदत्त का महल,
समय प्रातः द्वितीय प्रहर

श्रेष्ठी भानुदत्त उनकी पत्नी श्रीमती देवल देवी बैठी हैं। दम्पति प्रतिदिन की अपेक्षा आज विशेष प्रसन्न दिखाई दे रहे हैं। बीच-बीच में गहरी विषाद की रेखा क्षण भर को आकर हृदय के सघन दुःख का परिचय दे देती है।

देवलदेवी—नाथ ! आज क्या सचमुच चारु आ जायगा ?

भानुदत्त—देवी ! इस शंकालु वृत्ति को स्थान ही कहाँ है ? आज हमने उस उपाय का अवलंबन लिया है; जिसका चारु अनुमान भी नहीं लगा सकता।

देवलदेवी—आर्य सोमभद्र अभी तक नहीं आये ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भानुदत्त—विलंब तो लगेगा ही।

देवलदेवी—(विह्वल हो) वर्षों की थकी आँखें आज विश्राम पायँगी नाथ! ...... और मेरी मित्रा...... उसको जो असीम सुख होगा, उसकी कल्पना से मेरा रोम-रोम खिल उठता है।

भानुदत्त—सचमुच ही उसके भाग्य की काली रात्रि का अवसान हो चुका है। आज का मंगल प्रभात उसके जीवन में सुख शांति लेकर उपस्थित हुआ है।

देवलदेवी—उदित दिनकर की लाली उसके आँगन को ऐसे सुनहले रंग से रँग दे कि जहाँ नित्योदय ही बना रहे।

(मित्रवती का प्रवेश)

मित्रवती—(विषाद भरी मुस्कुराहट से) केवल कल्पनाओं से सुख की उपलब्धि नहीं होती माता जी!

देवलदेवी—होती है बेटी! आशा रूपी आकाश का अनंत वितान तना हुआ है। जगत इन्हीं की छाया में अपने स्वप्नों के संसार संजोया करता है।

मित्रवती—ये स्वप्नों के संसार कभी साकार नहीं होते माँ श्री!

भानुदत्त—पुत्री! निराशा के थपेड़ों को खाकर तुम विश्वास खो चुकी हो। परंतु अब वह क्षण दूर नहीं जब कि निराशा रूपी तम पलायन करता दृष्टिगोचर होगा।

मित्रवती—कदाचित् ऐसा ही हो। जाने क्यों मेरे हृदय में प्रसन्नता की लहर नहीं उठ रही; जब कि यह स्वाभाविक है कि भविष्य का आभास वर्त्तमान में होने लगता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(सोमभद्र का प्रवेश)

देवलदेवी—(विह्वल हो) कहाँ है मेरा लाल ?

सोमभद्र—(उदास नतमस्तक मौन है)।

भानुदत्त—क्या यह अस्त्र भी निरर्थक सिद्ध हुआ ?

सोमभद्र—(रुँधे कंठ से) हाँ स्वामिन्! मुझे स्वप्न में भी ऐसी आशा नहीं थी।

देवलदेवी—(दुखित हो) क्या कहा था तुमने मेरे लाल से ?

सोमभद्र—वही कहा जो आर्यश्रेष्ठि ने मुझे आदेश दिया था। किंतु मैं इस कार्य में भी विफल रहा।

भानुदत्त—दोहराओ सोमभद्र! उन्हीं शब्दों को दोहराओ जो तुमने चारु से कहे थे।

सोमभद्र—(दुखित हो मुँह फेर कर) नहीं स्वामिन्! नहीं मैं पुनः न कहने योग्य उन मर्मभेदी वचनों को न कह सकूँगा। उस समय कहते हुये मेरी पापिन जिह्वा भी न गली। मुँह पर वे शब्द लाते ही हृदय पर कशाघात सा लगता है।

भानुदत्त—(गंभीरता पूर्वक) नहीं कह सके······

सोमभद्र—(शीघ्रता से) कहा है आर्यश्रेष्ठि! वही कहा······बल्कि उससे भी अधिक······(गला भर आता है) पूछिये मुझसे, यह पूछिये कि मैंने क्या नहीं कहा और क्या नहीं किया ?

मित्रवती—तात की अनहोनी सुनकर भी पुत्र के हृदय में दुःख का संचार नहीं हुआ ? कितना हृदयस्पर्शी मर्मान्तक आघात है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भानुदत्त—सोमभद्र ! सचमुच तुमने मेरे मरण का समाचार चारु से कहा ?

सोमभद्र—(क्षणेक रुककर) हाँ स्वामिन ! केवल कहा ही नहीं वरंच बिलकुल उसी प्रकार अभिनय किया। जैसे कोई प्राणी इष्ट वियोग में घनी पीड़ा का अनुभव करता है। मैंने खून के आँसू बहाये तात ! पर........

देवलदेवी—पर क्या ? आगे कहो सोमभद्र ! क्या मेरा लाल व्यथित नहीं हुआ ?

सोमभद्र—सुनकर उन्हें दुःख हुआ।

मित्रवती—दुःख हुआ ! तब आये क्यों नहीं ?

सोमभद्र—कहते हैं विवशता है।

मित्रवती—(अन्यमनस्क हो) विवशता ? .... कैसी विवशता ? .... कौन सी विवशता उनका पथ रोके है। प्रत्येक बार यही वाक्य सुनती आ रही हूँ। ....उसका निराकरण भी हो सकता है।

सोमभद्र—दुनिया का प्रत्येक कार्य संभव है गृह स्वामिनी ! पर कुमार बतलावें तब न ? इसके आगे तो वे मौनव्रत ले लेते हैं। सचमुच उनकी विवशता के सम्मुख मैं भी विवश हो उठता हूँ। यह सब मेरी बुद्धि से परे है। सच बात तो यह है कि नहीं आने के सौ बहाने। वे उस अभागिन के प्रेम में ऐसे फँसे हैं कि आने का मन ही नहीं करते। (चला जाता है)।

भानुदत्त—(गंभीर हो) अब मैं अपना पथ चुन चुका हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवल देवी—(साश्चर्य) पथ चुन चुका हूँ !! अर्थात् ?

भानुदत्त— गृहस्थाश्रम का त्याग कर मैं वनोवास ग्रहण करूँगा। कल सूर्योदय के साथ ही मैं भी गृह जंजाल से मुक्ति पा लूँगा। दिशायें मेरा परिधान बनेंगी। धरती मेरी शैया और नील गगन चादर होगा। सारा विश्व कुटुम्ब।

मित्रवती—(उदास हो) नहीं नहीं तात! अनायास आप ये कैसे विचार कर रहे हैं ?

भानुदत्त—आयुष्यमती! यह विचार किया नहीं, हो चुका। आज तक मोह ममता से बेसुध होने से आत्मस्वरूप की सुधि भी न हुई थी। कभी भूले बिसरे विरागता की लहर आती भी थी तो चारु से मिलने की उत्कंठा तीव्र हो उठती और ममता के गहरे गह्वर में वह लहर विलीन हो जाती!

देवल देवी— चारु से मिलने की साध तो पूर्ववत् ही बनी हुई है।

भानुदत्त—(दृढ़तापूर्वक) नहीं. मैंने आशा की पाँख काट दी है। अशांत मन शांति की ओर अग्रसर हो रहा है। विचार दृढ़ हो चुके हैं।

देवल देवी— नाथ आपका संकल्प पूर्ण न हो सकेगा। श्मशान, संकट व दरिद्रता की विरक्ति क्षणिक हुआ करती है।

भानुदत्त—तुम यथार्थ कह रही हो। किन्तु मेरा संकल्प आज का नहीं, बहुत पुराना है। मैं कई दिनों से अपने मन को तोल रहा हूँ। कोई भी शक्ति मुझे इस निश्चय से नहीं डिगा सकती। उदित वैराग्य को चिरस्थायी रखना चाहता हूँ देवी!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवल देवी—(चौंककर) नाथ ! यह आपने कैसा निर्णय कर डाला ? उचित अनुचित का विचार भी कुछ किया होता।

भानुदत्त—देवी ! इसमें अनुचित ही क्या है ?

देवल देवी—हम परिवार वालों का ध्यान रखना भी आवश्यक कर्त्तव्य है आपका।

भानुदत्त—मैंने अपने कर्त्तव्य से मुख मोड़ा ही कब है ?

देवल देवी—भविष्य में तो कतराकर भाग निकलना चाहते हैं।

भानुदत्त—मैं पलायनवादी नहीं हूँ देवल देवी ! अभी तक इसी आशा में पड़ा रहा कि चारु को घर सौंपकर गृहत्याग करूँगा। पर ठीक दस वर्ष से उस उत्तराधिकारी की राह देखते देखते आँखें थक गईं। वृद्धावस्था का आक्रमण प्रारंभ हो चुका है। कभी न समाप्त होने वाले विकल्पों के चक्र में फँसे रहने पर आत्मकल्याण के द्वार सदा के लिये अवरुद्ध हो जायँगे।

देवल देवी—(रुद्धकंठ से) पुत्र जिस दिन से गया, लौट कर न आया। आप भी उस पथ पर चले जाना चाहते हैं; जहाँ घर कुटुम्ब की सुधि भी बिसरा दी जाती है। जायें, आप भी जायें। समझ लूँगी मेरा कोई भी नहीं है।

भानुदत्त—(स्नेह पूर्वक सम हुये) देवी ! तुम्हें व्यथित कर नहीं जाना चाहता। जब तक तुम प्रसन्नतापूर्व न कहोगी; तब तक आगे नहीं बढ़ूँगा। सच्चे हृदय से विचार करो कि संसार में सुख है कहाँ ? क्या हम मिथ्या मृग मरीचिका में नहीं भटक रहे ? क्या ये अतृप्त आकांक्षायें कभी पूर्ण हुई हैं ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवल देवी—पुत्र के आ जाने के पश्चात् आप जायें तो सुखकर रहेगा। आप हम लोगों के पालन-पोषण का भार किस पर छोड़ रहे हैं ? रक्षक के अभाव में हमारी सुरक्षा किस प्रकार होगी ?

भानुदत्त - देवी ! कभी न सुलझने वाली ये समस्यायें जीवन को सदा ही दुरूह बनाये रखेंगी। यहाँ न चैन है, न तृप्ति। सुरक्षा की बात तुमने एक ही कही। अरी बावरी ! इस नाशवान संसार में कौन किसका रक्षक है ? आज तुम मुझे दीक्षा नहीं लेने देती। काश ! मैं मर जाऊँ तब कौन रक्षा करेगा ? सत्य यही है कि प्राणी के सत्कर्म ही उसकी रक्षा करते आये हैं।

मित्रवती—यही सत्य है। कृपया आप अपने लिये ऐसे कटु वचनों का प्रयोग न करें।

भानुदत्त—यह असंभव नहीं है पुत्री ! ममत्व हमें तथ्य तक पहुँचने नहीं देता। जहाँ तक मेरा कर्त्तव्य व तुम्हारी सुरक्षा का प्रश्न है; वह पूरी तरह सुलझा हुआ है। चारु के कारण वेश्या का घर भरकर भी अभी इतनी संपत्ति शेष है कि कोई भी भरी पूरी गृहस्थी सुचारु रूप से चल सकती है। मैं रहूँ अथवा जाऊँ, तुम्हारे जीवन निर्वाह में आँच नहीं आ सकती।

मित्रवती—एक बार मैं पुनः आपसे आग्रह करूँगी कि विचार परिवर्त्तन कर चंद दिन और पुत्र की राह देख लें तो शुभ हो।

भानुदत्त—पुत्री ! मैं पुत्र की राह देखूँ और मृत्यु मेरी राह देख रही हो तो आत्मकल्याण किस प्रकार संभव हो सकेगा ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रवती—गृह में रह कर भी विरागता का अभ्यास किया जा सकता है तात !

भानुदत्त—हाँ अभ्यास किया जा सकता है, किन्तु पूर्णता श्रमण अवस्था में ही होती है। अतः तुम अपनी माता जी को समझाओ; ताकि तुम दोनों की सहर्ष स्वीकृति से मैं कल्याणकारी मार्ग पर अग्रसर हो सकूँ।

देवलदेवी—समझाने की आवश्यकता नहीं रही गुरुवर ! जब आप निर्णय हो कर चुके; तब मैं क्यों पथ की बाधा बनूँ ! श्री प्रभु से मंगल कामना करूँगी कि आपकी चेतन ज्योति निरंतर उज्वल उज्वलतर होकर जाज्वल्यमान हो।

भानुदत्त—धन्य है देवी ! परम प्रसन्नता हुई तुम्हारी स्वीकृति प्राप्त कर। (मित्रवती से) और बेटी मित्रा ! तुम क्यों मौन हो ? तुम्हारी स्वीकृति की भी मुझे अत्यंत आवश्यकता है। क्या विचार कर रही हो ?

मित्रवती—तात ! मैं सोच रही हूँ कि आपके जीवन के ये कितने महान मंगलमय क्षण हैं कि शरीर से ममता का अभाव हो गया और मैं कितनी मोही हो रही हूँ कि प्रतिक्षण वियोग की ज्वाला में जलकर भी मेरी आंतरिक निवृत्ति न हो पाई। मैं यदि इस कीच में फँसी हूँ तो आपको भी क्यों लिप्त रखूँ। अच्छा हो आप अहर्निशि अविरत अबाध गति से सहज आनंद का उपभोग करें।

भानुदत्त—आयुष्यमती ! मुझे तुमसे यही आशा थी। प्रभु तुम्हारा कल्याण करें।

पटाक्षेप,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचम दृश्य

वसंतमाला का आवासगृह

वसंतमाला क्षुभित बैठी है। दासी शुभा का प्रवेश,

वसंतमाला—अरी! तू आज रीते हाथ ही आ गई?

शुभा—हाँ स्वामिनी! चारुदत्त की माँ ने आज मुझे कुछ न देकर रीते हाथ लौटने को बाध्य कर दिया। साथ ही तिरस्कृत भी किया।

वसंतमाला—(क्रोध से फुंकारती हुई) अच्छा! उस बुढ़िया का इतना साहस! तूने कहा नहीं कि चारुदत्त को बैठे-बैठे कौन खिलायगा? क्या हमने उससे ऋण लिया है?

शुभा—मैंने भी सुनाई खूब। कहने लगी करोड़ों की संपत्ति तो ढो ढोकर ले गई। मैं क्यों चुप रहती। मैंने भी कह दिया कि तुम्हारा बेटा ही तो भोग विलास कर रहा है। कोई अपने लिये थोड़े ही ले गई हूँ। संपत्ति से मोह नहीं छूटता तो अपने बेटे को क्यों नहीं बुला लेतीं।

वसंतमाला—(व्यंगात्मक हँसी हँसकर) फिर क्या बोली?

शुभा—बोलती क्या? ऊपर के दाँत ऊपर और नीचे के नीचे रह गये। मानें तो एक बात कहूँ महादेवी!

वसंतमाला—तू तो मेरी मंत्राणी है। तेरी न मानूँगी तो और किसकी मानूँगी?

शुभा—आप विनोद करती हैं; पर मैं कहती हूँ पतेकी।

वसंतमाला—(आग्रह पूर्वक) कह तो सही।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुभा—यदि देवी वसंततिलका चारुदत्त को नहीं छोड़ना चाहतीं, तो चारुदत्त को ही क्यों न निकाल दिया जाय। 'न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी'।

वसंतमाला—तेरा कहना ठीक है; किन्तु वह मुआ, निकले तब न! बातों ही बातों में मैं कह भी चुकी हूँ। पर वह निर्लज्ज ड्योढ़ी के बाहर पैर भी नहीं निकालता।

शुभा—इसकी बिलकुल चिन्ता न करें आप।

वसंतमाला—तूने कोई युक्ति सोच रखी है क्या?

शुभा—(मुस्कुराते हुये) पूरी योजना बना ली है मैंने। 'न साँप मरेगा, न लाठी टूटेगी'।

वसंतमाला—(उत्सुकता पूर्वक) कुछ मुझे भी तो बता!

शुभा—रात्रि को किसी बहाने मद पिलाकर बेसुध होने पर निद्रित अवस्था में चतुष्पथ पर डाल आऊँगी। देवी तिलका को कानोंकान खबर भी न होगी।

वसंतमाला—तेरी बुद्धि का लोहा मानती हूँ शुभा। (कुछ सोचकर) पर ठहर, तनिक मैं वसंततिलका से परामर्श कर लूँ।

शुभा—(व्यंगपूर्वक हँसते हुये) उनसे परामर्श? तब तो हो गया कार्य सिद्ध। क्या कहेंगी? यही न कि चारुदत्त को निकाल रही हूँ। और वे सहर्ष अनुमति भी दे देंगी? आप बड़ी भोली हैं महादेवी! क्या बहकी-बहकी सी बातें करने लगती हैं। अरे, देवी तिलका के कानों में भनक भी पड़ी तो मेरी कुशल नहीं। कहीं ऐसा न हो कि तिलका जी से भी आप हाथ धो बैठें। वे तो अहर्निशि चारुदत्त के नाम की ही माला जपा करती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंतमाला—नहीं री, मैं तनिक उसके मन की थाह लिया चाहती हूँ।

शुभा—एक ही बात कही आपने! अरे बारह वर्ष अर्थात् पूरा एक युग बीत गया रंग ढंग देखते। फिर भी थाह पाने की अभिलाषा विद्यमान ही है। कृपया उनसे कहकर अपना रहस्य न खोलें।

वसंतमाला—अच्छा तेरी सम्मति स्वीकार है मुझे।

चतुर्थ अंक

दृश्य प्रथम

समय अर्धरात्रि, चतुष्पथ पर चारुदत्त,
मार्ग के बीचों बीच दीप स्तंभ है।

सुनसान अंधेरी रात्रि है। दीपक का प्रकाश मंद-मंद फैल रहा है। चारुदत्त नींद में करवट बदलते हैं। कंकड़ों के चुभने से अचानक जाग पड़ते हैं।

चारुदत्त—(साश्चर्य) हैं! यह क्या! मेरी शैया, बिछावन सब कहाँ गये? देवी वसंततिलका! कहाँ हो तुम? (चारों ओर देखते हुये) महल····अटारी कुछ भी नहीं, स्वप्न है! (पुनः निद्रित होने की चेष्टा करते हैं) कुछ क्षण पश्चात्—

प्रहरी—(रात्रि में गश्त लगाते हुये, नेपथ्य से) जाग ते र हो·······सा व धा न।

चारुदत्त—(चौंककर बैठ जाते हैं) महल में यह ध्वनि कैसी! ध्वनि बिलकुल निकट से ही आती प्रतीत हो रही है। महादेवी तिलका!······सुनयना!········

९०३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रहरी—(पुनः) सा व धा न, जा ग ते रहो।

चारुदत्त—(आँखें मलकर) पुनः यह ध्वनि !......नेत्र-भ्रम है अथवा मेरे कान मुझे धोखा दे रहे हैं। यहाँ न महल है, न मेरी पतिव्रता साध्वी पत्नी तिलका। (चारों ओर आश्चर्य-पूर्वक देखते हुये) राजपथ सा लग रहा है।......मैं राजपथ पर कैसे ! कुछ समझ में नहीं आ रहा। (दीप स्तंभ की ओर लक्ष्य कर) हे पथिकों के पथ प्रदर्शक प्रदीप ! युग युगों से तुम न जाने कितने यात्रियों को प्रकाशदान कर रहे हो। तुम्हारा सहारा पाकर कितने भूले भटके ठिकाने लगे होंगे ? परंतु तुमने मुझ जैसे भूले भटके के अंतर का अंधकार दूर किया है। हे तिमिरहर ! तुमने मेरे विवेक की आँखें खोल दीं। काश ! यहाँ तुम न होते तो कदाचित् मैं स्वप्न समझ इसी कंकड़ों भरे मार्ग में न जाने कब तक पड़ा रहता। संभव है किसी मानव, पशु आदि के पदाघात से मेरी भ्रान्ति दूर होती। अथवा हो सकता है किसी के वाहन आदि से दबाकर मुझे अपनी सच्ची स्थिति का भान होता या त्रस्त हो परलोक गमन कर जाता। हे दीप ! तुमने मुझे वह अलौकिक आलोक प्रदान किया है जो अब तक मेरे माता-पिता, पत्नी मित्रवती, मेरा वृद्ध सेवक आर्य सोमभद्र भी बारह वर्ष में न दे पाये।

प्रहरी—सावधान......(हठात् चारुदत्त को देखकर) ऐसी अंधेरी रात्रि में बीच राजपथ पर तुम कैसे बैठे हो बटोही !

चारुदत्त—(घबरा कर अटकते हुये)......मुझे......स्वयं अनभिज्ञ हूँ प्रहरी !

प्रहरी—अच्छा, प्रतीत होता है तुमने आसवपान किया है। चलते-चलते यहीं लड़खड़ा कर गिर पड़े हो। कदाचित् अब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चेत आया है। (डाँटकर) उठो, अपनी राह चलते बनो। नहीं तो बच्चू चोर उचक्कों के भ्रम में तुम्हीं पकड़ कर कैद कर लिये जाओगे।

चारुदत्त—(स्वाभिमान जागृत हो आता है) जिह्वा पर संयम रखो प्रहरी ! मैं कभी आसवपान नहीं करता।

प्रहरी—(व्यंग पूर्वक मंद-मंद मुस्कुराते हुये) तब श्रीमान् ! इस अवस्था में कैसे पहुँचे ? तुम्हारी वेश भूषा निश्चय ही चोर डाकू होने का संकेत नहीं कर रही। पर तुम हो कौन ?

(चारुदत्त विचार मग्न मौन हैं)

प्रहरी—(चारुदत्त का कंधा हिलाकर) अरे भाई ! बोलते क्यों नहीं, किन विचारों में बह रहे हो ?

चारुदत्त—(खिन्नमन) सताओ मत भाई ! समझ लो समय का मारा एक मनुष्य हूँ। छेड़ो मत, छोड़ दो मुझे मेरे भाग्य पर।

प्रहरी—(अकड़ कर) मुझे क्या लेना देना। कुशल चाहते हो तो शीघ्र ही अपने घर चले जाओ।

चारुदत्त—घर ! घर कहाँ है ! (आह भरते हैं)।

प्रहरी—तुम्हारा घर नहीं है राही ! क्या तुम परदेशी हो ?

चारुदत्त—नहीं, इसी नगरी का नागरिक हूँ। अब कृपा कर आगे न पूछो।

प्रहरी—(करुणा से भीग कर चारुदत्त का हाथ पकड़ मार्ग के एक ओर बैठकर) तुम बहुत संतप्त दिख रहे हो पथिक ! कदाचित् तुम्हारे मर्म स्थल पर गहरी चोट पहुँची है। चलो मैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुम्हारे घर तक साथ चलता हूँ। किस भाग्यवान के कुल दीपक हो तुम ? तुम्हारी भव्य मुखाकृति कुलीनता का परिचय दे रही है। सब दिन समान नहीं हुआ करते। प्रत्येक मानव पर संकट के बादल मंडराया करते हैं। मन छोटा न करो।

चारुदत्त—कुल दीपक नहीं, कुल का कलंक हूँ प्रहरी ! श्रेष्ठि भानुदत्त के पवित्र नाम पर लांछन लगा ....

प्रहरी—(बीच ही में बात काटकर) तो क्या आप कुंवर चारुदत्त हैं ?

चारुदत्त—हाँ, मैं ही अभागा वह चारुदत्त हूँ; जो अपनी कुकीर्त्ति के लिये प्रसिद्ध हो चुका है। मतिभ्रष्ट चारुदत्त अब किस मुँह से घर जाये ? मेरे सारे मार्ग अवरुद्ध हो चुके हैं। इस अधम तुच्छ जीवन से मृत्यु ही श्रेष्ठ है। तुम जाओ प्रहरी ! अपना कार्य करो। मैंने अपना पथ चुन लिया है।

प्रहरी— क्या आपका अभिप्राय आत्महत्या से है ? छिः पुरुष होकर ऐसी बात शोभा नहीं देती। अपराध पर अपराध करते जाना कहाँ की बुद्धिमानी है ? चलिये, मैं आपको आपके भवन तक पहुँचा दूँ।

चारुदत्त—हठ न करो बंधु !

प्रहरी—मैं आपको अकेला नहीं छोड़ सकता। मानवता के नाते मेरा कर्त्तव्य हो जाता है। आपकी मनोदशा इस समय स्वस्थ नहीं है। (मंद-मंद मुस्कुरा कर) आपको स्मरण रखना चाहिये कि मैं राजकर्मचारी हूँ। ऐसे अपराधियों को राज्य की ओर से कड़ी सजायें दी जाती हैं।

चारुदत्त—तुम हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ गये हो प्रहरी ! ....

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रहरी—अवश्य ! कर्तव्य का यही आह्वान है। आप भी अपने कर्त्तव्य का समुचित रूप से निर्वाह करें। अतीत की अनावश्यक भूलों की खाई प्रायश्चित कर सुकार्यों द्वारा पाट दें; ताकि भविष्य में पुनः पतन न हो। चलिये, मार्ग में कोई और कर्मचारी व्यर्थ ही परेशान न करें आपको।

चारुदत्त—(दुखित हो खिन्नता से)........अपने जघन्यतम कृत्यों से कुयश रूपी वल्लरी उगाकर मैंने अपनी पवित्र वंश-परंपरा में जो घोर लांछन लगाया है. उसका क्या होगा बंधु !

प्रहरी—आप स्वयं समझदार हैं श्रीमान् ! क्या अंतरात्मा के सच्चे पश्चात्ताप से अनंतभवों के गहन कलुष नहीं धुल जाते ? प्रभात का भूला पथिक संध्याकाल में भी गंतव्य स्थान पर पहुँच जाये तो क्या बुरा ?

दोनों का प्रस्थान

—※—

तृतीय दृश्य

समय मध्याह्न काल

स्थान श्रेष्ठी भानुदत्त का निवास स्थान।

चारुदत्त शयनकक्ष में विश्राम कर रहे हैं। वे उदास हैं। पत्नी मित्रवती का प्रवेश। वे पास ही बैठ जाती हैं। चारुदत्त भी उठकर बैठ जाते हैं। दोनों में संभाषण हो रहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रवती—आर्यवर ! आपका शुभागमन हुये आज कुल तीन दिवस हुये हैं। उत्तरोत्तर आपका मुख मलीन होता जा रहा है। कारण जानने की अधिकारिणी न होते हुये भी मेरे मन में उत्सुकता जागी है, इसका कोई उपाय ?

चारुदत्त—ये व्यंग वाण भी मुझे सह्य हैं। यदि मैं अपनी पतिव्रता पत्नी के हृदय को तनिक भी शान्ति दे सकूँ।

मित्रवती अनर्थ न करें देव ! मैं सत्य कह रही हूँ। मेरा अभिप्राय आपके अंतस् को आघात पहुँचाने का नहीं है। अनधिकार चेष्टा से भय लगता है। इसलिये........

चारुदत्त—सच-सच कहो भद्रे ! क्या अभी भी मुझे पराया समझ रही हो ?

मित्रवती—भला मैं क्यों समझने लगी ? मेरे मन-मंदिर में तो आपकी ही मूर्त्ति विराजमान है।

चारुदत्त—समझा ! मुझ पर विश्वास नहीं। हो भी कैसे ? कभी एक क्षण भी तुम्हें स्नेहदृष्टि से देखा हो तब न !

मित्रवती—कहने का अभिप्राय यही है कि बारह वर्ष की संयोगिनी की सुधि अनायास ही कैसे भुलाई जा सकती है। कदाचित् बुरा तो नहीं कह रही।

चारुदत्त—तुम्हारी वाणी को विषय मिला है देवी ! कहो जो तुम्हें कहना है। युग बीत गया। विरह की आग में झुलसाता रहा। कंचन सी देह सूख कर काँटा हो गई। सच, मैं तुम्हारे समक्ष अक्षम्य अपराधी हूँ।

मित्रवती—कौन कहता है ?

चारुदत्त—कहेगा कौन ? स्वयं मेरे कृत्य कह रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रवती—आप कहाँ की बात कहाँ ले बैठे। भूल होना मानव स्वभाव है। उसको परिमार्जित करना विवेक का कार्य है। आपके विवेक ने आपका उचित साथ दिया है।

चारुदत्त—(दुखित हो) कैसा साथ दिया, मैं जानता हूँ। जब सारा धन लुट चुका। अपकीर्ति ने आजीवन संग पकड़ लिया। अपनी प्यारी पत्नी, जन्मदातृ माँ को रक्त के आँसू रुलाया। पिताश्री मेरे ही कारण गृह त्याग कर संन्यासी हो गये।

मित्रवती—जो हो गया सो हो गया। समय पुनः लौट कर नहीं आता। संपत्ति की आप चिन्ता न करें। ये हाथ का मैल है। साथ ही पुण्य की दासी है। आपको जीवन निर्वाह में किसी प्रकार की असुविधा न होगी। मैं अपने पिताश्री की इकलौती पुत्री हूँ। उनकी बत्तीस कोटि दीनारों की संपत्ति की एकमात्र उत्तराधिकारिणी भी मैं हूँ। और कितनी संपत्ति चाहिये आपको ?

चारुदत्त पर वह संपत्ति लेकर मेरी कीर्त्ति में चार चाँद नहीं लगेंगे मित्रवती ! भला श्वसुरालय के धन से धनी कहलाना शोभा देगा ?

मित्रवती—हानि ही क्या है ? याचना थोड़े ही कर रहे हैं। वे स्वयमेव ही देंगे।

चारुदत्त—मेरा पौरुष मुझे धिक्कारेगा महादेवी !....... हृदय में हाहाकार मचा है। तीव्र बवंडर उठ खड़ा हुआ है। एक प्रकार की उलझन सी बनी हुई है, जो प्रतिक्षण मानस को कुरेद रही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रवती—(व्यंग से) अच्छा तो यों कहिये कि वसंत-तिलका की सुधि हृदय सागर में लहरा रही है। अहा ! कितनी भाग्यशालिनी है वह।

चारुदत्त—वसंततिलका ईर्ष्या की नहीं, तुम्हारी दया की पात्र है भद्रे !

मित्रवती—परिहास न करें आर्यवर ! मैं स्वयं आप दोनों के प्रेम व दया की भिखारिणी हूँ। निरंतर बारह वर्षों से पल-पल बाट जोहती रही। आपके दर्शन दुर्लभ रहे। पगध्वनि भी दुर्लभ हो गई। न जाने क्यों इतने पर भी स्नेह की डोर नहीं टूटी। अतएव आत्म-कल्याण भी नहीं हो सका। उस गणिका ने स्नेह पाश में ऐसा बाँधा कि आपने घर को बिलकुल ही भुला दिया। कभी भूले बिसरे ही सुधि आई होती। (आह भरकर) सब मेरे भाग्य का ही प्रतिफल है। आपको दोष नहीं दूँगी।

चारुदत्त—मैं अपना जघन्यतम अपराध भाग्य की ओट में छिपाना नहीं चाहता देवी ! मैं दोषी हूँ, लक्ष-लक्ष बार दोषी हूँ। हृदय की विशालता के कारण ही तुमने मुझे गृह में पुनः स्थान दिया। मैं तुम्हारा चिर कृतज्ञ रहूँगा।

मित्रवती—यह भी मेरा स्वार्थ है आर्यपुत्र ! सुख प्राप्ति की लालसा अंतरंग में छुपी हुई है और फिर गृह मेरा नहीं स्वामिन् ! गृहस्वामी आप हैं। आपके अभाव में हमलोग मात्र रक्षक थीं।

चारुदत्त—यह भी तुम्हारी महानता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रवती—ये सब व्यर्थ की बातें हैं। यह बताइये कि आप उस वेश्या की विरहाग्नि में तो नहीं दग्ध हो रहे ? यदि ऐसा है तो आपका यहाँ आना निष्प्रयोजन ही रहा।

चारुदत्त—कृपया उपहास करना छोड़ो शुभे ! मन की व्यथा तुम्हारी सांत्वना की सहायता की भूखी है।

मित्रवती—मेरी सहायता !

चारुदत्त—हाँ, आश्चर्य को अवकाश कहाँ ! क्या पत्नी पति की मंत्राणी नहीं ? .... बहुत सोच विचार के पश्चात् मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि मुझे वसंततिलका की चोरी से निकाला गया है। चूँकि देवी वसंततिलका वेश्यावृत्ति सदा अस्वीकार करती रहीं। इसी कारण माँ-बेटी की जब तब खटक पड़ती थी। इस ओर कुछ महीनों से दोनों में विशेष अनबन थी। तिलका उस गृह से निकलने के लिये बंदी पक्षी की नाईं तड़पती रहती हैं। मेरे विछोह में उस बेचारी पर क्या बीत रही होगी।

मित्रवती—वेश्या की वेश्यावृत्ति से अस्वीकृति ! नहीं-नहीं नाथ ! आपके लिये छलावामात्र था। केवल आपको अपने निकट रोक रखने का साधन ! ताकि अहर्निशि संपत्ति-स्रोत बना रहे।

चारुदत्त—तुम भ्रम में हो देवी ! यह अनोखी बात अवश्य है, परंतु असंभव नहीं। वह विशुद्ध कुमारी थी। तथ्य यह है कि लगभग तीन वर्ष विषय भोगों से लिप्त रहने पर देवी तिलका ने मुझे धर्म के प्रति सचेत किया। मुझे अपने कर्त्तव्य का भान कराया। उसी समय से वे भी नियमित धार्मिक अध्ययन में दत्तचित्त हो गईं। तब से अभी तक का समय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म सेवन में ही व्यतीत करते आ रहे हैं हम लोग। उन्होंने पातिव्रत धर्म अंगीकार कर लिया है। एवं यही व्रत उनकी माँ वसंतमाला को खल गया है।

मित्रवती—सचमुच ! तब तो अवश्य ही वह सती कहलाने योग्य है।

चारुदत्त—धर्म की साक्षी पूर्वक कहता हूँ कि तुम्हारे और माँ श्री के प्रति उनके हृदय में अगाध स्नेह व आदर है। वे मुझे सदैव ही यहां आने के लिये प्रेरित करती रहीं एवं गृहिणी की भाँति परिवार की सेवा में स्वयं को समर्पण करने की उत्सुकता प्रकट करतीं किन्तु लोकलाज का झीना परन्तु दृढ़तर अंचल .... मनोकामना पूर्ण करने में दोनों विवश थे देवी !

मित्रवती—आह ! बेचारी पर क्या बीत रही होगी।

चारुदत्त—वसंतमाला धन लोलुपी दुष्ट प्रकृति की वेश्या है। कौन जाने बेटी के साथ उसका कितना क्रूर घृणित व्यवहार होगा। उसकी मुक्ति का कोई उपाय ? प्रभु उसकी रक्षा करें।........यदि तुम कुछ सुझाव दे सको तो सुन्दर हो। एक बात और कह दूँ, कुछ कटु जान पड़ेगी।

मित्रवती—सब कुछ सहन करने की आदत पड़ गई है। निस्संकोच कहें।

चारुदत्त—अन्यथा न समझो शुभे ! मैं धनार्जन हेतु देशांतर जाना चाहता हूँ। तुम बतलाओ कब जाऊँ ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रवती—लंबी गहन रात्रि के पश्चात् चंद्र का आलोक उपलब्ध हुआ और पुनः वही सघन तिमिर ! चंद्र लुप्त हो जाना चाहता है। कितने कष्टप्रद वचन हैं देव !

चारुदत्त—मैं पति का कर्त्तव्य निबाहने में तुम दोनों के समक्ष बिलकुल असफल रहा। तुमने विवाह के पश्चात् सुख की अनुभूति नहीं की। दुःख पूर्ण जीवन व्यतीत करने को मैंने ही तुम्हें विवश किया। तुम्हारी किन शब्दों में सराहना करूँ। अतुल धैर्य पूर्वक तुमने अपनी सहिष्णुता का परिचय दिया। अब एक बार कुछ समय के लिये और क्षमाप्रार्थी हूँ।

मित्रवती—जाने की आवश्यकता नहीं है आर्यपुत्र ! यहीं व्यापार करें और आनंद से रहें। बिछुड़ना सह्य नहीं।

चारुदत्त—भद्रे ! मेरी विवशता पर ध्यान दो। मेरी स्थिति यहाँ मुख दिखाने योग्य भी नहीं है। हाट में साख रखना नितांत कठिन है। लज्जा से मेरा मस्तक नत है। विदेश में व्यापार बढ़ाकर पुनः यहाँ अपनी प्रतिष्ठा दृढ़ कर सकूँगा। तभी सुख पूर्वक जीवन-निर्वाह होगा।

मित्रवती—फिर विरह........

चारुदत्त—मैं शीघ्रातिशीघ्र लौटने का प्रयास करूँगा। तुम्हारी स्नेह-ज्योति मेरे मन मंदिर में निरंतर जागृत रहेगी। उसीके मधुर आलोक में मैं अपना पथ प्रशस्त करूँगा। स्वीकृति प्रदान कर मुझे अनुग्रहीत करो महादेवी !

मित्रवती—यदि मैं वज्र बनकर हाँ कह भी दूँ; तब भी मातुश्री की ममता कभी आज्ञा प्रदान नहीं करेगी। ज्ञात है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आपकी अनुपस्थिति ने उनके सशक्त तन को कितना जर्जर कर दिया है।

चारुदत्त—जानता हूँ देवी! ······ पर परिस्थिति के अनुकूल कठोर बनना होगा। उन्हें मनाना पड़ेगा। आशा है तुम मेरी सहयोगिनी रहोगी। विश्वास करूँ न तुम पर?

पटाक्षेप

दृश्य द्वितीय

स्थान—वसंतमाला का प्रासाद

समय—प्रातः द्वितीय प्रहर

वसंततिलका उदास है। चारुदत्त के अभाव में आज वह अत्यंत व्यथित है। वह परसों प्रातः से ही सारा महल कई बार छान चुकी है, परंतु उसके प्रिय पति का कहीं चिह्न भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा। नहीं मिलने तक निराहार रहने का निश्चय कर लिया है। वह अपने शयनकक्ष में तख्त पर लेटी है। आँखें अधिक रुदन के कारण फूल आई हैं व लाल भी हैं।

वसंतमाला का प्रवेश

वसंतमाला—(वसंततिलका के सिर पर हाथ फेरते हुये स्नेहपूर्ण स्वर से) पुत्री! आज तूने मुख में जल की बूँद भी न डाली। मैंने तेरे लिये स्वादिष्ट शीतल पेय विशेष रीति से तैयार करा कर भेजा, पर तूने ओष्ठ तक लगाने का कष्ट न किया। शुभा सुवासित पौष्टिक दुग्ध लाई उसे भी लौटा दिया। क्या हो गया है तुझे?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंततिलका—(उठकर रोषपूर्ण मुद्रा में) मुझे कुछ हो जाता तो अच्छा था। दुःख है कि मैं अच्छी हूँ।

वसंतमाला—ऐसे अप्रिय वचन न कह बेटी ! दुःख हो तेरे शत्रुओं को। भला मेरी आँख की पुतली को क्यों हो ?

वसंततिलका—माँ ! मैं जानना चाहती हूँ कि श्रेष्ठिपुत्र कहाँ हैं ?

वसंतमाला—(अत्यंत स्नेह पूर्ण स्वर में) बेटी ! मुझे ज्ञात नहीं। (नाटकीय ढंग से हाथ नचाते हुये) तुम दोनों के बीच का हाल मैं क्या जानूँ ?

वसंततिलका—हमारे बीच कोई वार्त्ता नहीं हुई। इसमें तुम्हारा ही हाथ है। उन्होंने बारह वर्षों से भवन की देहलीज पार नहीं की। अब अनायास रहस्यमय ढंग से उनकी अनुपस्थिति खल रही है।

वसंतमाला—खलने का तो कोई प्रश्न नहीं तिलका ! एक गया तो क्या, सैकड़ों पूँजीपति तेरे चरणों में लोटेंगे।

वसंततिलका—(जोर से चिल्लाकर) ये अवांछनीय पापयुक्त वचन मत सुनाओ माँ ! ऐसी कल्पना मात्र से मुझे पाप लगता है।

वसंतमाला—देखती हूँ तेरे हृदय में मेरे लिये कोई स्थान नहीं।

वसंततिलका—निश्चय ही नहीं है। वह माँ कैसी जो अपनी कन्या को सुखी नहीं देख सकती।

वसंतमाला—यह तेरा भ्रम है पुत्री ! मैं तो तुझे इससे अधिक सुखी करना चाहती हूँ। पर तू है कि मेरी बात मानती ही नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंततिलका—अभी भी न मानूँगी। तुम मेरा सतीत्व नष्ट करने पर तुली हो। बताओ आर्य चारुदत्त कहाँ हैं ?

वसंतमाला—तू तो ऐसे पूछ रही है जैसे वह मुझे जतला कर गया हो।

वसंततिलका—जतला कर न सही। पर तुम्हें निःसंदेह ज्ञात है।

वसंतमाला—यह सभी जानते हैं कि दरिद्रता ने घेर लिया; तब वेश्या का पुरुष से क्या प्रयोजन ?

वसंततिलका—न श्रेष्ठिपुत्र दरिद्र हैं, न मैं वेश्या।

वसंतमाला—गलत है पुत्री ! तेरा कथन सर्वथा गलत है। शुभा उसके घर से चाहे जब रीते हाथ लौटने लगी थी। उसका पिता है नहीं। कौन बैठा है कमाऊ, जो धन बढ़े। दरिद्रता न आयगी और क्या होगा ?

वसंततिलका—मेरी करोड़ों की संपत्ति उन्हीं की है। वे दरिद्र नहीं कहला सकते।

वसंतमाला—बावली न बन तिलका ! वेश्या की संपत्ति पर किसी दूसरे का अधिकार नहीं होता।

वसंततिलका—माँ ! मैं तुमसे बार-बार कह रही हूँ मुझे वेश्या शब्द से संबोधित मत करो। मुझे वेश्यावृत्ति से अत्यंत ग्लानि है। मेरा सतीत्व लांछित होता है। आर्य चारुदत्त मेरे पति हैं। उन्हें छोड़कर अन्य सब पुरुष पिता बन्धु की भांति हैं।

वसंतमाला—(व्यंग से आँखें नचाते हुये) अरी वाह री सती ! एक ही कही तूने। 'मेंढ़की को भी जुकाम होने लगा'। पति था तो छोड़कर क्यों चला गया चोरी चोरी ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंततिलका—इसी में रहस्य है। यदि संध्या तक वे आते हैं तो ठीक है। अन्यथा मैं ही अपना मार्ग खोज लूँगी।

वसंतमाला—क्या करेगी?

वसंततिलका—चली जाऊँगी। इस नारकीय गृह से सदा सदा के लिये मुक्त हो जाऊँगी। ढूंढूंगी उन्हें। पद रज भी पा गई तो धन्य हो जाऊँगी। उनकी माँश्री व सुश्री भगिनी मित्रवती की सेवा में स्वयं को समर्पित कर दूँगी।

वसंतमाला 'धोबी का गधा, घर का न घाट का'। इस गगनचुम्बी प्रासाद को त्याग मूर्खता न करना पगली। आज तक वेश्या को समाज ने नहीं अपनाया। तू दुत्कारी जायगी। तेरे लिये वहाँ कोई स्थान नहीं। चारुदत्त तुझे किसी अवस्था में शरण नहीं देगा। ऐसी कल्पना भी तुझे दुःखकर है बेटी! तू मेरी प्यारी पुत्री है। मैं तेरे भले की ही कहूंगी। तुझ पर बड़ी-बड़ी आशायें केन्द्रित हैं। (बार-बार बलैया लेती है।)

वसंततिलका—इसीलिये न कि तिलका तुम्हारा घर सोने से मढ़ दे। स्वार्थ की दुनिया है जहाँ देखो वहाँ स्वार्थ ....केवल स्वार्थ.......(फूट-फूटकर रो पड़ती है)।

वसंतमाला—तुझे मेरी अच्छी बातें भी बुरी लगती हैं। तो ले मैं चली। पर भविष्य का विचार कर ले। तेरी नन्हीं सी वय, तुझे दुनिया का अनुभव नहीं है। यदि मेरी बात न मानी तो हानि ही उठाना पड़ेगी। (प्रस्थान)

(वसंततिलका रो रही है। सहसा उसके हृदय में वही प्रतिध्वनि बार-बार होती है। वह घबरा जाती है। कानों पर हाथ रख यहाँ वहाँ देखती है)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिध्वनि नेपथ्य से—

आज तक वेश्या को समाज ने नहीं अपनाया। तू दुत्कारी जायेगी। तेरे लिये वहाँ कोई स्थान नहीं। चारुदत्त तुझे किसी भी अवस्था में शरण नहीं देगा।। तू अनुभव शून्य है। दुत्कारी जायगी। तेरे लिये वहाँ कोई स्थान नहीं। कोई स्थान नहीं, कोई स्थान नहीं। (कानों को जोरों से भींच लेती है।)

वसंततिलका—(कुछ क्षण रुक कर, स्वगत) मैं अनुभव शून्य हूँ। मेरे लिये कोई स्थान नहीं। (कक्ष में व्यग्र हो चक्कर लगाने लगती है) न सही; यदि यहाँ से निकलने का प्रयत्न सफल न हुआ तो तिलका! शीलव्रत का महान संबल सदा के लिये छूट जायगा। (अत्यधिक क्रोध में दाँत पीसती है) यहाँ वासना के कीड़े, कामी कुत्ते तेरे तन की बोटी-बोटी चींथ डालेंगे। कुत्तों से भी जघन्यतर मौत होगी। संभल, तनिक भी डिगी तो जीवन और मरण दोनों भयावह हो उठेंगे। (विचारकर)...... जाना ही होगा। चलूँ कुछ बहुमूल्य रत्न रख लूँ। समय पर काम आयेंगे।....न....नहीं यह द्रव्य अनर्थ कर डालेगा। इसको छूना भी पाप है। मेरा भाग्य मेरा धर्म ही सहायक होगा। इन जड़ ठीकरों से कैसी सुरक्षा? (दबे पैर बाहर निकलती है पुनः रुक कर) सादा वेश बना लूँ; नहीं तो मार्ग भी दूभर हो उठेगा! (मंजूषा में से एक श्वेत सादी साटिका निकालकर पहिन लेती है, ताकि पहिचानी न जा सके। तन के संपूर्ण आभूषण एक-एक कर उतार देती है और तुरन्त ही गृह त्याग कर देती है।

पटाक्षेप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थ दृश्य

समय संध्याकाल,
स्थान वसंततिलका श्रेष्ठि चारुदत्त के निवास स्थान पर।

चारुदत्त विदेश प्रयाण कर गये हैं। घर में माँ श्री देवल देवी व पत्नी मित्रवती हैं। वसंततिलका पता लगाती हुई द्वार पर पहुँचती है। वह असमंजस में पड़ी है। क्या कहे, किस प्रकार प्रविष्ट हो भवन में। थक कर उसका तन चूर-चूर हो रहा है। वहीं बैठ जाती है। दो तीन दिन से निराहार रहने के कारण साथ ही मार्ग की थकावट से उसकी सांस तेजी से चलने लगती है। वेदना से व्यथित अंतःकरण भर आता है। आँसुओं की झड़ी लग जाती है। तत्पश्चात् वह मूर्च्छित हो जाती है। नयन पक्ष्मों से आँसू ढुलक कर कपोलों पर रेखायें अंकित कर देते हैं। मुखाकृति म्लान है। कुछ समय पश्चात् देवल देवी बाहर आती हैं। अचानक वसंततिलका को देखकर-

देवल देवी—(स्वगत) अरे ये कौन? कहाँ से आई, कैसी पड़ी है यहाँ? (निकट आकर) मूर्च्छित सी दिख रही है। (हिला डुलाकर) जल लाऊँ। (तत्क्षण पात्र में जल लाती है एवं तिलका के मुख पर छिड़कती है। वह धीरे-धीरे सचेत हो आँखें खोलती है)।

वसंततिलका—(घबराकर क्षीण स्वर में) मैं कहाँ हूँ?

देवल देवी—(माथा सहलाते हुये) घबरा मत बेटी! तू सुरक्षित स्थान में है। तू किस गृह की शोभा है एवं यहाँ कैसे आई?

वसंततिलका—(बोलते हुये सांस भर आती है) कुछ न पूछो माता जी! मुझ अभागिनी की करुण कहानी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवल देवी—तुझसे बोला नहीं जाता बेटी ! चल भीतर कुछ और घूँट खा ले। (हाथ पकड़ कर भीतर ले जाती है। वसंततिलका धरती पर बैठ जाती है। बिछे हुये गलीचे की ओर संकेत कर) अरी यहाँ बैठ बेटी !

वसंततिलका—मेरे लिये यही स्थान उचित है।

देवल देवी—(दुग्ध पात्र व पक्वान लाकर) ले बेटी ! ये मधुर दुग्ध पी ले और ये मोदक खा ले; ताकि वाणी को बल मिले।

वसंततिलका—केवल जल लूँगी माँ जी ! तीन दिन से निराहार हूँ अपनी प्रतिज्ञा पूर्त्ति हेतु।

देवल देवी—कुछ उदर में डाल ले पुत्री ! फिर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर लेना। बन सका तो पूर्त्ति में मैं भी सहायता दे दूँगी।

वसंततिलका—(प्रसन्न हो) सच ! आप सहायता देंगी ? वचन दे रही हैं ?

देवल देवी—(शांति से) अवश्य, मानव को सहयोग देना प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है। पुत्री ! वचन ही मान लो। (दुग्ध पात्र देना)

वसंततिलका—माँ श्री ! आपके स्नेह पूर्ण वचन सुनकर परम प्रसन्नता हुई। कृपया जल ही देतीं तो........

देवल देवी—(बात काट कर) पुत्री ! पागलपन नहीं किया करते। रीते पेट भला जल क्या पी सकेगी ? मोदक न खा, पर दुग्ध पान तो कर ले। जब मैं वचन दे रही हूँ; तब यह आनाकानी कैसी ? पी ले बेटी पी ले। (वसंततिलका दुग्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पान करने लगती है) तनिक चैन मिले। देख तो कंचन सी काया कैसी कुम्हला गई है।

वसंततिलका—यह काया ही शत्रु बन गई है माँ जी! (पीकर) आप कितनी अच्छी हैं। आपके कर-कमलों द्वारा दिया गया दुग्ध अमृतसम सुमधुर लगा।

देवल देवी—तुझे क्या कष्ट है बेटी!

मित्रवती का प्रवेश

मित्रवती—माँ श्री! ये कौन हैं? मैं इन्हें नहीं पहिचान पा रही।

वसंततिलका—भगिनी श्री! मैं आपको शरणागत हूँ। साथ ही कृपाकांक्षिणी भी।

मित्रवती—तुम्हारा अभिप्राय?

वसंततिलका—तुम्हारी दयादृष्टि की भिखारिणी अपना आँचल फैलाये है। (आँचल फैला लेती है)।

मित्रवती—स्पष्ट कहो सखी! किस प्रकार की सहायता की आवश्यकता है?

देवल देवी—हाँ, हाँ कहो पुत्री! मैं अपना वचन कैसे पूर्ण करूँ?

मित्रवती—मातेश्वरी! कैसा वचन?

देवल देवी—कौन जाने इस बावली ने किस प्रतिज्ञा-पूर्त्ति हेतु निराहार रहने का व्रत ठान लिया है। मैंने इसकी प्रतिज्ञा-पूर्त्ति में सहयोग देने का वचन दिया, तब कहीं जाकर इसने दुग्ध सेवन किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रवती—तब कहो क्या चाहती हो ?

वसंततिलका—वचन.......

मित्रवती—वचन ! वचन तो मातुश्री दे चुकी हैं। उनकी बात अटल है। निश्चिंत होकर कहो।

वसंततिलका—मुझे आपका सहयोग अपेक्षित है।

मित्रवती—अवश्यमेव !

देवल देवी—अरी पुत्री ! कुछ कहेगी भी या केवल वचनों में ही बाँधती रहेगी।

वसंततिलका—(संकोच पूर्वक) माँ जी ! मैं आपकी शरण चाहती हूँ।

देवल देवी (साश्चर्य) शरण ! स्पष्टतः तुम्हारा अभिप्राय क्या है ? कुछ समझ में नहीं आ रहा।

वसंततिलका आपके आँचल की छाया चाहती हूं मैं वसंततिलका।

देवल देवी—(जैसे सर्प ने डस लिया हो, इस प्रकार दूर छिटक कर) वसंततिलका वेश्या ! (क्रोध से फुँकारती हुई) आह ! क्या यहाँ भी आग लगाने आ गई ?

वसंततिलका—(करुण स्वर से) आग लगाने नहीं मातुश्री ! अपनी स्वयँ की आग बुझाने आई हूँ। (चरण स्पर्श करती है)।

देवल देवी—चल हट पापिष्ठा ! तेरी परछाईं भी दुःखदाई है। मुझे छूकर अपवित्र न कर अभागिन !

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंततिलका—(अत्यंत विनम्र हो) लक्ष-लक्ष अपशब्द कह लें; परंतु अपनी छाया में विश्राम दें मातुश्री !

देवल देवी—(दाँत पीसकर) ताकि मेरे लाल को पुनः मेरी आँखों से ओझल करने में सफल हो सके।

वसंततिलका—नहीं-नहीं........

देवल देवी—(वसंततिलका के शब्दों पर ध्यान न देते हुये) बारह वर्ष मेरे एकमात्र पुत्र का मुख नहीं देखने दिया। (आँखों में आँसू भरकर) मेरी वधू मित्रवती भरी तरुणाई में पति विरह का घोर कष्ट सहती रही। तूने परिवार भर को रक्त के आठ-आठ आँसू रुलाया है कुलक्षिणी !

वसंततिलका—(दुःख पूर्वक) नहीं माँ जी ! ऐसी बात नहीं है। मैं........

देवल देवी—(क्रोध पूर्वक) हूँ........मैं सब समझती हूँ। जिस लोभ लालच से तू यहाँ तक दौड़ी आई है: वह संपत्ति अब नहीं रही तेरा मुँह भरने के लिये।

वसंततिलका—(व्यथित हो) माँ ! मुझे नहीं चाहिये संपत्ति ! केवल आपका स्नेह पूर्ण आश्रय चाहती हूँ।

देवल देवी—नागिन के पोर-पोर में विष समाया रहता है।

मित्रवती—मातुश्री ! आप प्रकोष्ठ में विश्राम करें, अन्यथा अस्वस्थ हो जायँगी। (हाथ पकड़कर अंतर्कक्ष में पहुँचा देती है। वे वसंततिलका की ओर आग्नेय नेत्रों से देखती हैं। मित्रवती बलात् भीतर ले जाती है। पुनः आकर)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुम जा सकती हो। व्यर्थ ही माँ श्री को आघात मत पहुँचाओ।

वसंततिलका—(अश्रुपूर्ण मुद्रामें) तुम भी ऐसा कहने लगीं भगिनी! मैं कहाँ जाऊँ? न मेरा घर न द्वार।

मित्रवती—जहाँ से आई हो, तुम्हारा वहीं लौट जाना उचित होगा।

वसंततिलका—वहाँ के द्वार मेरे लिये सदा-सदा को अवरुद्ध हो चुके हैं बहिन! यदि यहाँ तुम्हारी छाया न मिली तो जीवित रहने का एकमात्र साधन भी खो चुकूँगी। फिर आत्मघात ही मेरा अंतिम सहारा होगा।

मित्रवती—ऐसा न कहो बहिन! जाओ सुखपूर्ण जीवन व्यतीत करो। अनेकों श्रीमान् तुम्हारे पद पंकजों पर न्योछावर होंगे। तुम्हारा सौंदर्य मादक व अनुपमेय है।

वसंततिलका—ऐसे वचन सुनने से भी मुझे पाप लगता है। निष्ठुर न बनो जीजी! नारी हृदय कोमल होता है। वह कभी अनुचित अविवेकी कार्य करने को प्रेरित नहीं करता। क्या इस कार्य के विचारने मात्र से सतीत्व पर लांछन नहीं लगेगा?

मित्रवती—लगेगा सतियों को, तुम्हें.......

वसंततिलका—(बीच ही में संतप्त हो) समझी........ (आह भरकर) मैं वेश्याकुल में उत्पन्न हुई हूँ। तुम्हारा मुझे वेश्या समझना अनुचित नहीं कहा जा सकता। फिरी भी जीजी मुझे वारांगना न कहो। प्रभु की साक्षी से शपथ पूर्वक मैंने पति के रूप में केवल आर्य चारुदत्त को ही वरण किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चरित्र ही मेरी पूँजी है। मेरे पास यही एक निधि शेष है। संसार का सारा वैभव भी मेरी पूँजी की समता नहीं कर सकता। मुझे कुछ नहीं चाहिये। केवल आपकी संगति की अभिलाषा है। तुम आर्यश्रेष्ठी से मेरे चरित्र के विषय में अनुसंधान कर सकती हो।

मित्रवती- परन्तु वे हैं कहाँ बहिन !

वसंततिलका—(घबराकर) क्या वे यहाँ नहीं आये ? आह ! दुर्भाग्य तूने पल्ला जो पकड़ लिया है।

मित्रवती—(शांतिपूर्वक) आये तो थे; पर आज प्रातः ही धन उपार्जन हेतु विदेश प्रयाण कर गये।

वसंततिलका—तब तुम्हीं बताओ जीजी ! अब मैं कहाँ जाऊँ ? तुम मुझे उनके दर्शन भी मत करने देना, पर इस विशाल भवन के कोने में स्थान दे दो भगिनी ! मैं क्रीतदासी के सदृश रहूँगी। यहाँ मेरा शील निष्कलंक रह जायगा।

मित्रवती— मृदुता पूर्वक) परंतु मातु श्री......................

वसंततिलका—उन्हें मनाना होगा जीजी ! और........ तुम्हीं उन्हें मना भी सकोगी। मेरे स्त्रीत्व की विवशतता, जन्मदातृ माँ अवश्य समझ सकेंगी। क्या शीलवती नारी दूसरी शीलवती को व्यभिचार की वैतरणी में धकेलने का साहस कर सकेगी ? नहीं (दृढ़ता पूर्वक) कभी नहीं।

मित्रवती—(विचार मग्न है)।

वसंततिलका—कहो मेरी रक्षिका (पैर पकड़ कर) कहो, क्या एक शीला नारी का तुम पर कोई अधिकार नहीं ? क्या मेरे शील रक्षण का तुम्हारे ऊपर कोई उत्तरदायित्व नहीं ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रवती—है, (गले लगाकर) रहो रहो कोने में नहीं मेरी लघु भगिनी के सदृश। इस गृह में जितना मेरा अधिकार है उतना ही तुम्हारा भी रहेगा। नारी, नारी के द्वारा कदापि तिरस्कृत नहीं हो सकती। नारी अपनी सुशीलता के कारण अतीत अनागत किसी भी काल में दैव हा सम्माननीया रहेगी।

वसंनतिलका—(हर्षाश्रु बहने लगते हैं) धन्य हो उठी जीजी! कृतकृत्य हो गई तुम्हारा सहारा, स्नेहाश्रय पाकर। तुम जैसी वत्सला बहिन श्री को पा जन्म-जन्म के पुण्य का फल किंवा आज अनायास ही प्राप्त हो गया। वर्षों की साधना व आकाँक्षा आज फलवती हुई।

मित्रवती—सुन चुकी हूँ तुम्हारे विषय में। आर्यश्रेष्ठि से जैसा सुना था उससे कहीं अधिक तुम्हें पाया। सचमुच तुम्हारा व्रत लोकोत्तर है बहिन। घी का दाहक अग्नि से सम्पर्क होते हुये भी न जलना अपने आप में एक चमत्कार है। तुम्हारा ब्रह्मचर्य अनूठा है।

वसंततिलका—सब आर्य श्रेष्ठि की सत्संगति का प्रभाव है जीजी! अन्यथा मुझे सद्भावना छू भी नहीं पाती।

मित्रवती—(हँसकर) कीचड़ में कमल खिला है। चलो अंतर्प्रकोष्ठ में। प्रथम हमारा कार्य पूज्य मातेश्वरी की क्रोधाग्नि को प्रशान्त करना होगा। तुम तनिक ओट में हो जाओ।

वसंततिलका—गृह प्रवेश के प्रथम ही प्रवंचना! नहीं जीजी ऐसा न कहो। आत्मघात से भी अधिक प्रवंचना असह्य हो उठेगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रवती—तब फिर चलो। साँच को आँच कहाँ? हीरे की आभा घनों की सहस्रों चोटों से कहीं क्षीण नहीं होती। कदाचित् मैं गलत समझी थी। यथार्थतः खरा स्वर्ण कसौटी पर कसने से भीत नहीं होता।

वसंततिलका—(संकुचित हो) यदि आपका कथन यथार्थ भी मान लिया जाय तो हीरे की नहीं, उसके पारखी की महिमा ही माननी होगी। जिसने उसे अमूल्य घोषित किया है।

मित्रवती—तुझमें वचन चातुरी खूब है री! चल अब सीधे माँ श्री के समीप ही चलें। (हाथ पकड़ कर कक्ष में ले जाती है)।

(वसंततिलका हठात् रुक जाती है)

मित्रवती—अरी, रुक क्यों गई भगिनी।

वसंततिलका—(अनुनय पूर्वक) एक बात कहूँ जीजी! इस पवित्र गृह में प्रविष्ट होने के प्रथम उस महा अपवित्र गृह के अवशेष इस तन के वसनों का भी परित्याग कर देना मुझे इष्ट है। तुम्हारी दी हुई मंगल साटिका से स्वयं का शृंगार करूँगी।

मित्रवती—यह भी तुमने सद्गृहिणी के सदृश उचित ही कहा है। परमपिता परमात्मा की अनुकंपा से तुम्हारे समस्त अभीष्ट सिद्ध हों।

पटाक्षेप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचम दृश्य

समय मध्याह्नकाल
समुद्र का किनारा

श्रेष्ठि चारुदत्त विविध प्रकार का वाणिज्य करते हुये अनेक आपत्तियों को पार कर अर्जित संपत्ति को लेकर अपनी नगरी चंपा लौट रहे थे कि अकस्मात् उनका जलपोत भँवर में आ जाता है। सारे यात्री त्राहि-त्राहि करने लगते हैं। दैव योग से श्रेष्ठी पुंडरीक एक दूसरे या जलमान पर उसी मार्ग से श्रीपुर लौट रहे थे। वे प्रयत्न कर डूबते जल पोत के कुछ यात्रियों को बचाने में सफल हो जाते हैं।

नेपथ्य में—जलयान भँवर में आ जाता है। त्राहि-त्राहि का करुण स्वर वायुमंडल में गूँज उठता है। कर्ण भेदी चीत्कारें मृत्यु की भयानकता का उद्घोष कर रही हैं। शनैः शनैः कोलाहल शांत होने लगता है। बचे हुये चंद व्यक्तियों का प्रवेश वे परस्पर वार्त्तालाप कर रहे हैं।

पहला व्यक्ति—हम लोगों का सौभाग्य है जो जीवित बच गये हैं।

दूसरा व्यक्ति—हाँ बन्धु! (गहरी सांस लेकर) उफ! मैं तो उस क्षण की कल्पना करता हूँ तो रोमांच हो आता है। कितना भयानक संकट था। मृत्यु ताल स्वर से नाच रही थी। एक क्षण पश्चात् ही हम लोगों की इहलीला समाप्त हो जाती।

तीसरा व्यक्ति—कहावत है न मित्र! मारने वाले से बचाने वाला सदैव बड़ा होता है।

चौथा व्यक्ति—यही हुआ भी। उस क्षण तो केवल मृत्यु ही दिखलाई पड़ रही थी। जीवन की रेखा का सूक्ष्म अस्तित्व भी प्रायः समाप्त हो गया था कि अनायास ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उद्धारक के रूप में श्रीपुर के श्रेष्ठि पुत्र आर्य पुंडरीक का यान त्वरित गति से निकट आ गया।

पाँचवाँ व्यक्ति—और हम चंद लोग भी बच गये। सचमुच आर्य पुंडरीक ने हमें मृत्यु के मुख से खींच लिया।

दूसरा व्यक्ति—अपने कितने साथी तो हमसे बिछुड़ कर गहरे जल में समा गये। बेचारों के परिवार वाले कितनी आशा भरी आँखें लगाये होंगे।

पहला व्यक्ति—और यह हृदय विदारक समाचार हमीं को देना पड़ेंगे मित्र ! कितना दुःख होगा। मेरे कानों में तो वही हाहाकार गूँज रहा है।

तीसरा व्यक्ति—वह तरुण, कैसा भला सा नाम था उसका, उसे मैं हाथ पकड़ कर यान में खींच रहा था कि विनाशिनी लहर मुझसे पृथक कर अपने साथ ले भँवर में विलीन हो गई। आह ! उसकी वह विवशता, आशा भरी चितवन और मर्म भेदी चीत्कार—मेरे हृदय पटल पर ज्यों की त्यों अंकित है। कालांतर में भी मैं उसे भुला न सकूँगा।

चौथा व्यक्ति—नियति के आगे मनुष्य अत्यंत विवश है बन्धु ! मनुष्य कुछ सोचता है और होता कुछ और है।

पाँचवाँ व्यक्ति—लो क्या यह कल्पना भी की थी कि इस प्रकार हम लुट पिट कर अपने घर पहुँचेंगे। खूब व्यवसाय किया। लाखों की संपत्ति अर्जित की। सोचा था सुख चैन से जाकर परिवार से मिलेंगे। संपत्ति के नाम से तो लगभग सभी स्वाहा हो गया।

दूसरा व्यक्ति—जैसे घर से निकले थे; वैसे ही फिर पहुँच जायँगे। वर्षों के कठिन परिश्रम पर पानी फिर गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीसरा व्यक्ति—बस बंधु ! यही समझो कि जीवन बचा है। संपत्ति तो हाथ का मैल है। जीवन है तो पुनः अर्जित कर लेंगे। न कुछ लेकर आये हैं न कुछ लेकर जायँगे।

पाँचवाँ व्यक्ति - तुम्हारा कथन सत्य है बंधु ! पर मेरी दूसरी ही धारणा है। मेरा अनुभव यही कहता है कि संपत्ति है तो जीवन सार्थक है, अन्यथा जीवन दो कौड़ी का है। मानव का नहीं, उसके गुणों का नहीं, उसकी संपत्ति का सम्मान होता। दरिद्र दुरदुराया जाता है। मेरे घर की भूतपूर्व परिस्थिति से तुम अपरिचित नहीं हो मित्र ! उस निर्धनता ने मेरे परिवार को कहीं का न रखा। समाज से च्युत हुआ। संबंधियों ने मुख फेर लिया। सच मित्र ! वे सब ऐसे हो गये जैसे जन्म-जन्म से हम परस्पर अपरिचित रहे हों।

चौथा व्यक्ति—ऐसा ही होता है मित्र ! संसार स्वार्थी है। विपत्ति में मनुष्य का कर्त्तव्य है परस्पर सहयोग देना। वह अपने इस प्रकृतिजन्य कर्त्तव्य की अवहेलना करता है; क्यों ? केवल अपने क्षुद्र स्वार्थों के कारण।

पाँचवाँ व्यक्ति—इसीलिये मित्र ! मेरा मर जाना ही अच्छा था। क्योंकि जीवन की विषम परिस्थितियों से मैं खूब अवगत हूँ। जीवित रहने की अपेक्षा मरना अधिक सरल है।

पहला व्यक्ति—मानव मरने के लिये तो जन्मा ही है बंधु ! किंतु जब तक जीवन है; तब तक कठिनाइयों का सामना करना होगा, उनसे जूझना होगा। धैर्य धारण करो।

पाँचवाँ व्यक्ति—किन्तु निर्धन का जीवन अत्यंत दुरूह है। मृत्यु.......................

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(श्रेष्ठिपुत्र आर्य पुंडरीक का श्रेष्ठी चारुदत्त के साथ प्रवेश)

पुण्डरीक—(उपर्युक्त व्यक्ति की पीठ थपथपाते हुये) चिन्तित न हों आर्य ! आपके कष्ट निवारण का मैं भरसक प्रयत्न करूँगा। आज से आप सब मेरे अतिथि हैं। निस्संकोच हो मुझे सेवा का अवसर प्रदान करें।

दूसरा व्यक्ति—आर्य ! हम सब आपके इस असाधारण सौजन्य के प्रति अत्यधिक आभारी हैं।

पुण्डरीक—आभारी नहीं, आर्यजन ! अधिकारी हैं। मानवता का यही आह्वान है। इस सत्य की अवहेलना नहीं की जा सकती।

चारुदत्त—फिर भी ऐसी सत्यनिष्ठा आप जैसे विरलों में ही मिल पाती है।

पुण्डरीक—मित्र ! इतना उठाकर मुझे लज्जित न करो। आप सब चलें। रथ प्रस्तुत है।

(सबका प्रस्थान)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंक पंचम

प्रथम दृश्य

श्रेष्ठी प्रियदत्त का भवन

समय प्रातःकाल द्वितीय प्रहर

श्रेष्ठिपुत्र पुण्डरीक व श्रेष्ठी चारुदत्त का वार्त्तालाप

चारुदत्त—मित्र ! मैं अब घर जाना चाहता हूँ। अनुमति प्रदान करो।

पुण्डरीक—(चौंकते हुये) ऐसी शीघ्रता क्या है मित्र। पूर्ण स्वस्थ तो हो लो।

चारुदत्त—अब मैं पर्याप्त स्वस्थता अनुभव कर रहा हूँ। तुमने मुझ पर जो अकारण अनुग्रह किया है; उसके लिये मैं किन शब्दों में सराहना करूँ।

पुण्डरीक—नहीं मित्र ! इसकी क्या आवश्यकता है, जब कि मेरा यह कर्त्तव्य था। कर्त्तव्य प्रशंसा नहीं चाहता। तुम्हारे जैसा मित्र पाकर मुझे अत्यंत प्रसन्नता है। तुम्हें स्वस्थ देखकर मेरा आनंद हृदय में नहीं समा रहा।

चारुदत्त—यह मेरा परम सौभाग्य ही है जो मधुर स्नेह की अनुभूति हुई है, उसे मैं आजीवन नहीं भूल सकता। तुम्हारे संरक्षण में मेरा पुनर्जीवन हुआ है। तुम्हारा मैं चिर कृतज्ञ रहूँगा।

पुण्डरीक—ऐसी बात नहीं है बंधु ! भला मुझमें इतनी सामर्थ्य कहाँ ? भाग्यशाली प्राणियों को कहीं भी योग्य सामग्री प्राप्त हो जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारुदत्त—यद्यपि सिद्धांततः तुम्हारा कथन यथार्थ है; तथापि मैं गलत नहीं कह रहा हूँ। यदि मेरी बात न मानी तो लोकव्यवहार ही नष्ट हो जायगा।

पुण्डरीक—सिद्धान्त के समक्ष लोक व्यवहार कोई मानी नहीं रखता।

चारुदत्त—यह तुम्हारी हठ है मित्र! तुम्हीं बताओ हमारा जलयान जब लहरों की चपेट में आ गया; तब उस समय यदि तुम अपने यान में शरण न देते तो?

पुण्डरीक—अरे भाई! देते कैसे नहीं, होनहार ही ऐसी थी। तुम्हारा बचना अनिवार्य था। प्रकृति के ऐसे कुछ सुनिश्चित कार्यक्रम हैं, जिन्हें हम अल्पज्ञ समझ नहीं पाते।

चारुदत्त—कुछ भी हो। मैंने जिस दिन गृह-त्याग किया; उसी दिन से विपत्तियाँ मेरी सहगामिनी बन गईं। स्नेहवश मेरे श्वसुर भी साथ हो लिये। नियति के कारण उनसे बिछुड़ एकाकी रह गया। अर्जित सम्पत्ति भीलों ने लूट ली। निर्धनता में व्यापार कैसा? जंगलों में भटकता रहा। दरिद्रता में मति भ्रष्ट हो जाती है। एक सन्यासी के प्रलोभन के जाल में फँस जीवन की आशा भी त्याग देना पड़ी।

पुण्डरीक—(दुखित हो) ओह! संकट पर संकट!

चारुदत्त—किन्तु आयु शेष थी। प्रकृति सहायक बनी। अंतर में साहस का संचार हुआ। एक बार पुनः आत्म-विश्वास से कार्य प्रारंभ किया। इस बार भाग्य अनुकूल रहा और पुरुषार्थ सफल।

(अनायास श्रेष्ठी प्रियदत्त का प्रवेश)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रियदत्त—तरुणों में आदर्श हो वत्स ! तुमने विधि के अंक मिटाये हैं।

(दोनों खड़े हो जाते हैं)।

चारुदत्त—(अभिवादन की मुद्रा में) चारुदत्त का अभिवादन स्वीकार करें तात ! कृपया विराजें।

पुण्डरीक—(हाथ जोड़कर) नमन करता हूँ तात !

प्रियदत्त—(पास ही रखी पीठिका पर बैठकर) चिरंजीव रहो आयुष्यमानों ! वत्स चारुदत्त ! तुम्हारा स्वास्थ्य अब कैसा है ?

पुण्डरीक—ये जाना चाहते हैं पिताश्री !

प्रियदत्त—नहीं, कुछ दिन शान्ति से रहो। तुम अभी यथेष्ट स्वास्थ्य लाभ नहीं कर पाये हो।

चारुदत्त—(संकुचित हो) महानुभाव ! मैंने आप सबको अत्यधिक कष्ट दिया है। मुझे गृह-त्याग किये बहुत दिन हो गये हैं। मातेश्वरी राह देखती होंगी।

प्रियदत्त—फिर भी शारीरिक क्षीणता देखते हुये तुम्हारा रुकना अनिवार्य है। अभी हमें तुम्हारा पूर्ण परिचय भी प्राप्त नहीं हुआ। क्या इतने स्नेही होकर भी अपरिचित ही रह जाओगे ?

पुण्डरीक—बतलाने में हानि न हो मित्र ! तो क्या हम सब तुम्हारा परिचय पाने की आकांक्षा कर सकते हैं ?

चारुदत्त—अवश्यमेव मित्र ! हानि की कोई संभावना नहीं। तुम सबने मुझे अपनाया है, स्नेह प्रदान किया है तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फिर अभिन्नों से दुराव कैसा ? पर मैं अपना परिचय भी क्या दूँ ? मैंने निरंतर भूलें की हैं। जब मैं अपने विगत जीवन पर दृष्टिपात करता हूँ तो हृदय रो पड़ता है।

प्रियदत्त—वत्स : तुम भूल रहे हो। भाग्य की प्रतिकूलता सभी मनुष्यों को अपने दुष्प्रभाव से आक्रांत कर देती है।

चारुदत्त—भाग्य का आवरण डालकर अपनी भूलों को छिपाने में मुझे आत्मग्लानि होती है। अब केवल पश्चात्ताप ही शेष रह गया है।

पुण्डरीक—ज्ञात होता है तुम दार्शनिक भी हो। आत्म-निरीक्षण कर तुमने अपने को माँज लिया है।

चारुदत्त—नहीं, ऐसा कहकर तुम अतिक्रमण कर रहे हो मित्र! मैं कुसंगति में पड़ अपना धर्म धन सब कुछ खो बैठा। कुल की प्रतिष्ठा का भी मुझे ध्यान न था। मैं अविवेकी स्वेच्छाचारी बन गया। अपने ही हाथों अपना घोर अकल्याण कर डाला।

पुण्डरीक—मित्र ! अतीत को बार-बार दोहराने से लाभ नहीं। तुम्हारे वर्त्तमान ने उस कालिमा को धो दिया है।

प्रियदत्त—यह बड़ी सुन्दर बात है। जब कि वृद्ध अतीत को तथा तरुण भविष्य को सुखद सुनहला मानते हैं और वर्त्तमान से दोनों असंतुष्ट रहते हैं, तब तुम्हारा वर्त्तमान ही सुख-शान्तिदायक है। सचमुच तुम भाग्यवान हो चारुदत्त !

चारुदत्त—आप सबका आशीर्वाद ही उन्नति में सहायक सिद्ध हुआ है तात ! जीवन का मूल्य समझ सकने की क्षमता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कदाचित् आ रही है। नियति का मुझ पर यह बड़ा भारी उपकार है।

प्रियदत्त—आयुष्यमान ! आपदायें विवेक की जननी तथा अभाव आविष्कार के जनक हैं।

चारुदत्त—आपका कथन यथार्थ है। मुझे इन संकटों ने इतनी शिक्षा दी है; जितनी सहस्रों उपदेशक भी मेरे मस्तिष्क में न भर पाते।

प्रियदत्त—प्रयोगों के माध्यम से यह शिक्षा अनुभव-प्रसूत होकर तुम्हारे जीवन में निखरी है।

पुण्डरीक—इनका जीवन एक वृहद् आख्यान ही बन गया है तात ! ऐसे कर्मठ मित्र को पाकर मैं धन्य हो उठा हूँ।

चारुदत्त—(हर्षित हो) और मैं भी।

प्रियदत्त—आयुष्मान चारुदत्त ! तुम्हारा स्थायी निवास कहाँ है ?

चारुदत्त—जी, उज्जैनी मेरी मातृभूमि है।

प्रियदत्त—उज्जैनी ?

चारुदत्त—जी हाँ। आपके आश्चर्यान्वित होने का कारण ?

प्रियदत्त—'उज्जैनी' नाम सुनते ही युगों-युगों पहले की घटना नयनों में साकार हो आई।

चारुदत्त—धृष्टता न हो तो मुझे भी उस घटना से अवगत करें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रियदत्त—(आँख बन्दकर क्षणिक सुख का रसास्वादन कर) यदि सुनने की जिज्ञासा है तो सुनाने में मुझे कोई आपत्ति नहीं। पर.........अच्छा प्रथम तुम्हारी बात समाप्त हो ले। यहाँ तुम्हारे आगमन का हेतु ? क्या पर्यटनार्थ आये थे ?

चारुदत्त—नहीं व्यवसाय करना मुख्य ध्येय था; उसी की पूर्त्ति-हेतु मैंने विदेश भ्रमण किया।

प्रियदत्त—कहाँ-कहाँ भ्रमण कर आये ? वाणिज्य लाभ-दायक रहा ?

चारुदत्त—नहीं महानुभाव ! लाभ का स्थान क्षति एवं संकट ही भरते रहे। वहुत से द्वीप सागरों को लांघकर जब मैं रत्नद्वीप पहुँचा, तव भाग्य ने करवट बदली। दिन दूनी रात चौगुनी व्यापार में वृद्धि होने लगी। लक्ष्य पूर्त्तिकर मैंने स्वदेश हेतु प्रयाण करना उचित समझा। मार्ग में हमारा जलपोत दुर्घटना ग्रस्त हुआ। मित्र पुण्डरीक ने मुझे संपत्ति सहित जीवन दान दिया। संप्रति मैं आपके समक्ष पुत्र रूप में उप-स्थित हूँ।

प्रियदत्त—ज्ञात होता है तुम्हें मेरी वात सुनने की तीव्र उत्कंठा है। इसीलिये संक्षेप में ही तुमने अपनी बात समाप्त कर दी।

चारुदत्त—हाँ जिज्ञासा बलवती हो उठी है, कहें आप।

प्रियदत्त—लो सुनो ! हमें भी अपने अनन्य मित्र की सुधि हो आई है। हमारे परिवार को सुख वैभव से परिपूर्ण वनाने में उन्हीं का वरद हस्त रहा। तुम्हारी उज्जैनी नगरी के ही निवासी थे मेरे मित्र भानुदत्त।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारुदत्त—(साश्चर्य) भानुदत्त ?

प्रियदत्त—चौंक क्यों गये वत्स। क्या तुम्हारा उनसे परिचय है ?

चारुदत्त—(धीरे से) कदाचित् हो, आप आगे कहें।

प्रियदत्त—उनके स्मरण मात्र से रोमांच हो आता है। हमें पूर्व में किये सत्कर्मों के फल से ऐसे सुहृद मित्र की प्राप्ति हुई है।

पुण्डरीक—तात! आप उन्हीं का स्मरण करते रहते हैं ?

प्रियदत्त—हाँ वत्स! तब तुम शिशु थे। परिवार पर अचानक संकट के बादल घिर आये। आपत्तियों ने घेर लिया। उस समय मित्र भानु ने हमारी जो सहायता की, उसे हम जन्म जन्म तक नहीं भुला सकते। वत्स! तुम पुण्डरीक के गुणगान करते नहीं थकते। किन्तु मेरे मित्र की उदारता के सम्मुख तुम्हारे मित्र का उपकार नगण्य है।

चारुदत्त—वह कैसी अनोखी सहायता थी ?

प्रियदत्त—अवश्य ही तुम्हारे हृदय में जिज्ञासा होना स्वाभाविक है। सहायक तो कुछ और भी मिल जाते हैं, पर ऐसा रहस्यात्मक दानीका नाम सुनना भी असंभव सा है।

पुण्डरीक—तात। रहस्यात्मक दानी। अर्थात् ?

प्रियदत्त—और कोई शब्द उनके लिये उपयुक्त भी नहीं है। उन्होंने करोड़ों की निधि चुपचाप लाकर दे दी। भीषण अग्निकांड से हमारा भवन धराशायी हो गया था। यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संवाद किसी अन्य व्यक्ति से पाकर वे तत्काल यहाँ आये। साथ ही मणि मंजूषा भी लेते आये। जब मैंने स्वींकार करना चाहा तो उन्होंने मित्रता की शपथ दिलाकर यह रहस्योद्घाटन न करने का वचन भी ले लिया।

पुण्डरीक—मित्र की मित्रता महानता के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गई।

प्रियदत्त—प्रिय वत्स ! उस निधि से हमारी आपत्तियाँ ही नहीं टलीं; अपितु सुख समृद्धि की वृद्धि भी हुई। पश्चात् हमने उनकी दी हुई संपत्ति लौटाना चाही तो यह कहकर उन्होंने टाल दिया कि उदरस्थ भोजन पुनः व्यवहार में नहीं लाया जा सकता मित्र ! हमें उनके ये स्नेहपूर्ण वचन आज भी ज्यों के त्यों स्मरण हैं कि "मित्र ! अपने स्नेही मित्र भानु को अपने मित्र के प्रति कर्त्तव्य व अधिकार का समुचित उपयोग करने से वंचित न करो"। (हर्ष विभोर हो) सचमुच जीवन में ऐसे मित्र का मिलना अति दुर्लभ है।

पुण्डरीक—वे दो वार अपने यहाँ आये भी हैं। ऐसी कुछ धुंधली सी सुधि है मुझे।

प्रियदत्त—दो बार नहीं वत्स ! कई बार आ चुके हैं।

पुडरीक—मुझे तो दो बार का ही स्मरण है पिताश्री !

प्रियदत्त—(सिर हिलाते हुये) हाँ तुम छोटे भी थे। इधर कुछ वर्षों से उनके कोई समाचार नहीं मिले। मेरे प्रयत्न निष्फल रहे। वत्स चारुदत्त ! नाम सुनकर तुम आश्चर्य चकित कैसे रह गये थे। क्या इसमें कोई राज है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुण्डरीक—तुम उन्हें अवश्य जानते होगे। वे उज्जैनी के विश्रुत नागरिक हैं।

चारुदत्त—(विचारणीय मुद्रामें) जानता हूँ मित्र! परन्तु..........

प्रियदत्त—परन्तु क्या?

चारुदत्त—मैं सोच रहा हूँ, जिन्हें मैं जानता हूँ वे ही आपके मित्र हैं अथवा नहीं। क्योंकि एक ही नाम के दो व्यक्ति भी हो सकते हैं।

प्रियदत्त—शंका उचित है वत्स!—(विचार कर) उनका छोटा सा परिवार है। पत्नी है, एक पुत्र है और पुत्रवधू भी है। सृष्टि का नियम है फूलों के साथ काँटे भी उत्पन्न हो जाते हैं। एक ओर जहाँ फूल अपने सौंदर्य व सौरभ से जन-जन को आकर्षित कर मुग्ध कर लेता है; वहीं दूसरी ओर काँटे भयानक चुभन भी पैदा कर देते हैं। इसी अनुसार उनके एक-मात्र पुत्र ने पत्नी का त्याग कर माता-पिता के सहज स्नेह को तिलांजलि दे गणिका को अपना लिया है। भानुदत्त की आशा आकांक्षाओं पर तुषारापात हो गया। तब से वे दुखी उदास रहने..................

चारुदत्त—(अत्यंत व्यथित हो) बस बस अब आगे और कुछ न कहें तात! उनका अभागा पुत्र मैं ही हूँ।

प्रियदत्त—(हर्षित हो) तुम! तुम्हीं हो उनके पुत्र! मित्र भानुदत्त के पुत्र चारुदत्त!

पुण्डरीक—यह अद्भुत संयोग। प्रकृति ने अपना कैसे मिलाप कराया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारुदत्त—पिता श्री मेरे ही कारण संसार से विरक्त हो साधु हो गये। मेरी आँखें बहुत विलंब से खुलीं। मैं ही अपने परिवार के संक्लेश का कारण बना।

प्रियदत्त—मित्र भानु स्वकल्याण में लग गये और हम गृहस्थी के दलदल में ही लिप्त हैं। उन्हें मेरा कोटिशः प्रणाम। वत्स चारुदत्त! (दुखित, लज्जित चारुदत्त की पीठ थपथपाते हुये) तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। तुम्हारे पिता शुभ कार्य में लगे हैं। साथ ही तुम भी सुमार्ग पर लौट आये हो और अपने कर्त्तव्य को पहिचान कर अग्रसर हो गये हो।

चारुदत्त—तात! मैंने अपने निर्मल वंश की परंपरा में जो कलंक लगाया है वह अमिट हो गया। अब तक जीवन का कुछ भी सदुपयोग न कर सका।

प्रियदत्त—भूल को समझ लेने से ही कल्याणपथ प्रशस्त होने लगता है। आयुष्मान्! भविष्य में उत्तरोत्तर तुम्हारी वृद्धि हो।

चारुदत्त—आपका आशीर्वाद मेरे पथ का संबल बने।

प्रियदत्त—चलो अंतर्प्रकोष्ठ में चलें। यह सुसंवाद सबको सुनाकर आनंद का प्रसाद बाँट दें।

सबका प्रस्थान

पटाक्षेप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीय दृश्य

समय प्रातःकाल द्वितीय प्रहर
श्रेष्ठी चारुदत्त का भवन,

मित्रवती—(स्वगत) वसंततिलका आज कहीं दिखाई नहीं दे रही। न जाने किस विवर में प्रविष्ट हो गई है। भवन का एक एक कक्ष छान लिया। पर उसका पता नहीं। जैसे पंछी बनकर उड़ गई हो। (सहसा सुधि हो आती है) सब जगह खोज चुकी। दासी-कक्ष और देख लूँ। कदाचित् उन लोगों को कुछ आदेश दे रही हो। (प्रस्थान)

दासी-कक्ष के समीप ही दूसरे कक्ष में वसंततिलका बैठी है। उसका मुख द्वार की विपरीत दिशा में है। मित्रवती आती है। सहसा उसे विनोद सूझता है। वह वसंततिलका के नेत्र बंद कर लेती है। वसंततिलका घबरा जाती है, किन्तु तुरंत सावधान हो मित्रवती के हाथ टटोलती हुई—

वसंततिलका—कौन ? भद्रा ?

मित्रवती—(स्वर बदलकर) ऊँ.........हूँ.........

वसंततिलका—(हँसते हुये) ओह जीजी ! हाँ ! जीजी ही हैं। (मित्रवती हँसते हुये आँख खोल देती है) अरे. तुम यहाँ कैसे चली आईं ?

मित्रवती—तुझे ढूँढ़ती थक गई सखि ! और तू यहाँ छुपी बैठी है। विदित नहीं कि श्रेष्ठिपुत्र पधार रहे हैं।

वसंततिलका—(प्रसन्नतापूर्वक) बड़ी प्रसन्नता हुई जीजी ! प्रातः ही दासी भद्रा के द्वारा सूचित हुआ था।

मित्रवती—अरी, तो यहाँ बैठी बैठी आनंद ले रही है क्या ? शीघ्रता कर उनकी आगमन वेला सन्निकट है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंततिलका—(अनुनय करती हुई) ना जीजी ! मुझे यहीं रहने दो।

मित्रवती—सखि ! आज सौभाग्य का मंगलोदय है; जो आर्यपुत्र देश विदेश का भ्रमण कर अनेक द्वीप सागरों को लाँघ हमारे बीच पुनः सकुशल आ रहे हैं। मेरा हृदय तो बाँसो उछल रहा है। तुम यह क्या कह रही हो ?

वसंततिलका इस आनंदमय सुसमाचार से मेरे भी अंग अंग पुलकने लगे।

मित्रवती—मातेश्वरी कह रही थीं कि प्रातःकाल उनके विमान नगर के बाह्य उद्यान में रुके हैं। उनके स्वागतार्थ नगर-श्रेष्ठियों ने विशाल आयोजन किया है। वे ससम्मान ला रहे हैं। इस प्रकार समझो कि एकाधमुहूर्त्त में हम दर्शन पा सकेंगी। तदर्थ मैं तेरा अन्वेषण करती रही कि यह सुसंवाद शीघ्र ही तुझ तक पहुँचा दूँ।

वसंततिलका—पर जीजी ! मेरा विचार है कि मैं प्रकट न होकर प्रच्छन्न रीति से इसी कक्ष में निवास करूँ।

मित्रवती—(हँसकर) पगली। भला ऐसा क्यों ?

वसंततिलका—(गंभीरतापूर्वक) सच जीजी ! विनोद नहीं। आप गंभीरतापूर्वक विचार करें। मेरा रहना यहाँ विपत्तिकारक सिद्ध हो सकता है। जन साधारण में प्रकट होने पर आर्यश्रेष्ठि की कीर्त्ति में कालिख लग जायगी। उनका अपयश होगा। और मुझसे सहन न होगा जीजी ! कि उनके सुदिन आने पर मेरी उपस्थिति दुर्दिन की सुधि दिलाती रहे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रवती – तुम यथार्थ अनुमान नहीं लगा पा रही हो भगिनी ! श्रेष्ठिपुत्र के हृदय में तुम्हारे लिये अत्यधिक स्नेह व आदर है।

वसंततिलका—हो सकता है कि उनकी वही पुरातन विचारधारा हो। तब भी मैं नहीं चाहती कि वे उच्च पद पर प्रतिष्ठित हो मुझ जैसी तुच्छ नारी को ग्रहण करें। मैंने बहुत दिनों तक उनकी उन्नति का मार्ग अवरुद्ध किया है। तुम्हारी शरण में रहकर मैं अपने नारीधर्म शील का संरक्षण भले प्रकार कर सकूँ। इसी तरह मेरा शेष जीवन निःशेष हो। बस यही आकाँक्षा है। सुख वैभव से तृप्त हूँ।

मित्रवती—सखि ! ऐसा मत कहो। अभी तुम्हारी वय ही क्या है तुम आदर्श हो। तुमने शील संरक्षण हेतु सुख सामग्री को तूल सदृश ठुकराया है। अब अपने सुदिन आये हैं। तुम अपनी तरुणवय में पति के सुखों का त्याग करो और मैं अखंड सुख का उपभोग करूँ। नहीं, कदापि नहीं।

वसंततिलका—जीजी ! तुममें और मुझमें धरती आकाश का अंतर है। आर्यश्रेष्ठि से तुम्हारा गठबंधन धार्मिक संस्कारों सहित सामाजिक मान्यता प्राप्त है। जब कि मेरा प्रेम अनुचित है।

मित्रवती—धार्मिक संस्कार न सही। न सही सामाजिक मान्यता। पर उन्होंने तुम्हें अपनाया तुमने प्रभु की साक्षी ले अपना कौमार्य उन्हें सौंपा। तुमने सत्कर्त्तव्य का निर्वाह कर आजीवन उन्हें ही पति माना, तब तुम्हीं बताओ अधार्मिकता कहाँ रही ? यह न्याय है। नीति की भित्तीपर ही हम आधारित नहीं रह सकते। न्याय की नींव डालनी ही होगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंततिलका—तुम भूल रही हो जीजी ! हम सामाजिक प्राणी हैं। सामाजिक रूढ़ियाँ हमें माननी ही होंगी। लोक-व्यवहार पर चलना हमारा कर्त्तव्य है।

मित्रवती—(सरोष) लोक व्यवहार क्या नारियों के ही लिये है ? पुरुष अपराध कर निर्दोष कहलाये और नारी निरपराधिनी रहकर भी मस्तक न उठा सके। श्रेष्ठिपुत्र अपराध से अछूते नहीं रह सकते। (गर्वपूर्वक) ये कैसा न्याय ? मैं इन रूढ़ियों के बंधनों से उन्मुक्त रहना चाहती हूँ। नारी सदैव पद-दलित हो, त्रास पाये एवं पुरुष गर्वोन्नत रहकर समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करे असंभव............असंभव। यह अन्याय है। अन्याय का प्रतिकार होना नितांत आवश्यक है।

वसंततिलका—जीजी ! तुम अपनी भगिनी के प्रति उत्कृष्ट स्नेहाभिभूत हो लोक व्यवहार भूल बैठी हो।

मित्रवती—मैंने कहा न सखि ! ये मिथ्या लोक व्यवहार मुझे तनिक भी मान्य नहीं। लोक निर्मम है। सत्य से कोसों दूर है। यहाँ सत्य की अर्थी जलती है।

वसंततिलका—तो बताओ, हम तुम सभी उसकी लपटों से झुलसने से बच सकेंगे ?

मित्रवती—हाँ, बचने का उपक्रम अवश्य करेंगे। न भी बचें पर एक न एक दिन हम कुंदन बन लोगों को आश्चर्य चकित तो कर सकते हैं। व्यक्ति अपनी भावनाओं से ही बनता बिगड़ता है।

वसंततिलका—जीजी ! समाज से विरुद्ध होकर लोहा लेना कहाँ की बुद्धिमानी है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रवती—तो क्या थोथे भय से भीत होकर अपने अमूल्य मानव जीवन को साधारण कीट पतंग की भाँति नष्ट-प्राय: कर देना उचित है ?

देवलदेवी—(नेपथ्य से) मित्रा ! वसंत ! कहाँ हो ? (शीघ्रता से प्रवेश) ।

वसंततिलका—विराजें मातुश्री ! (दोनों खड़ी हो जाती हैं) ।

देवलदेवी—ना ना मैं बैठूँगी नहीं । तुम दोनों बैठी बैठी क्या कर रही हो ? सुसज्जित हो जाओ, चारु आता ही होगा । (हर्षपूर्वक) वर्षों पश्चात् मेरा चारु आ रहा है । मनः सिंधु में हर्ष की उत्ताल तरंगें उठ-उठ विलीन हो रही हैं । आनंद हृदय में समा नहीं रहा । तुम्हें ज्ञात है री ! मेरा चारु विशाल वैभव सहित आ रहा है । नगर के नर नारी उसे देखने दौड़ रहे हैं । सभी श्रेष्ठी समुदाय में होड़ सी लगी है कि प्रथम कौन उससे भेंट करता है । (हर्ष विभोर हो आँखें मूँदकर) मुझे ऐसा लग रहा है कि कब उसे अपनी पलकों में समेट लूँ । उठो, मेरी वधुओ ! सोलह शृंगार कर लो । तुम सुहागिनियों को देख मैं अपने नयना जुड़ा लूँ ।

मित्रवती—इस पगली की बातें सुनीं माँ जी ! क्या कह रही है ?

देवलदेवी—क्या कह रही है ?

मित्रवती—ये श्रेष्ठिपुत्र से साक्षात्कार नहीं करेगी और आज से इस गृह में प्रच्छन्न रूप से निवास करेगी ।

देवलदेवी—(साश्चर्य) क्यों ? भला अपने पति से साक्षात्कार करने में असमंजस का क्या कारण ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रवती—इसका कहना है कि मेरे कारण श्रेष्ठिपुत्र की कुकीर्त्ति होगी।

देवलदेवी—हूँ अं"""जब बारह वर्ष तेरे घर में रहा; तब ?

वसंततिलका—तब की बात और थी माता जी। अब तो वे समाज में पुनः प्रतिष्ठित हो रहे हैं। केवल मेरे ही कारण कुल में कलंक लगता हो यह उचित नहीं। अनेकों के हित में परिवार को और परिवार की भलाई में एक का बलिदान श्रेयस्कर है।

मित्रवती—पर यहाँ अहित कहाँ हो रहा है ?

वसंततिलका—मेरे कारण लोग उनकी अवमानना करें; इसे अहित ही मानना होगा जीजी ! लोकलाज""""

देवलदेवी—(बीच ही में) अरी ! ये लोकलाज कौन वला है ? तुमने अभी दुनिया देखी ही कहाँ है, क्या जानो इसकी रीति नीति। चमत्कार को नमस्कार करती है दुनिया। किसके मुँह में दाँत हैं जो विरुद्ध में एक वचन भी निकाले।

वसंततिलका—भय के कारण यदि कोई कुछ न कहे तो उससे सम्मान नहीं बढ़ सकता मातुश्री !

देवलदेवी—अच्छा, तू ही बता, यदि लोग अज्ञानतावश स्वर्ण को पीतल कहें तो क्या बुद्धिमान उसे फेंक देंगे ?

मित्रवती—यही तो मैं भी कह रही हूँ मातुश्री ! विरहाग्नि में इसे जानबूझकर जलती हुई कैसे छोड़ दूँ ? अपराध भी क्या है इसका ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवलदेवी—मित्रवती यथार्थ कह रही है तिलका ! मेरी तुम दोनों आँखें हो। ये कैसे हो सकता है कि एक आँख रोये और दूसरी हँसे। मेरी आँखों की ज्योति तो तुम्हीं हो।

वसंततिलका—एक बार पुनः विचार करें मातुश्री ! आवेग में आ कोई निर्णय करना उचित नहीं।

देवलदेवी—(स्नेह पूर्वक) आवेग तुम्हारे रक्त में आ सकता है। बेटी ! मैं तो अनुभव करते-करते वृद्ध हो गई हूँ। नारी में क्षमा व धैर्य धारण की अद्भुत शक्ति है। माँ, पत्नी सहोदरा व पुत्री के रूप में उसकी क्षमता सर्वत्र निखरी है। (दृढ़ता पूर्वक) परिवार की भलाई-बुराई का मुझे पूरा-पूरा ध्यान है। सत्य की सदा सर्वदा विजय होती आई है। व्यर्थ की बातों को छोड़ निश्चित रहो। कहाँ का विवाद ले बैठी इस शुभावसर पर। तेरी बुद्धि पर तरस आ रहा है वसंत ! उठ, सुन्दर वसनाभूषणों से सज्जित हो ले। विलंब हो रहा है।

मित्रवती—(हाथ पकड़ कर) उठ, उठ, आर्यपुत्र की आगमन बेला आसन्न है।

वसंततिलका—जीजी ! मुझे विवश न करो। मैं बार बार प्रार्थना करती हूँ, हाथ जोड़ती हूँ तुम्हारे पैरों गिरती हूँ। यदि मैं एक डग भी आगे बढ़ी तो निश्चय ही गिर पड़ूंगी। मेरे पैर डगमगा रहे हैं।

मित्रवती—मैं जो हूँ तेरे साथ। गिर कैसे पड़ेगी ? जीवन भर सहारा देती रहूँगी।

वसंततिलका—तुम्हारा ही आधार पाकर तो पुनरुज्जीवित हो उठी हूँ। इस असीम कृपा हेतु तो जन्म जन्म कृतज्ञ

(१४९)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहूँगी जीजी ! मुझ जैसी दुर्बल नारी पर अब और अधिक भार न रखो, मैं इसे सहन न कर सकूँगी।

देवलदेवी—बड़ों की आज्ञा माननी पड़ती है बेटी। ऐसा पागलपन नहीं किया करते।

वसंततिलका—धृष्टता क्षमा करें मां श्री ! मैं लाख अच्छी हूँ, पर संसार ऐसा नहीं मान सकता। वह मुझे वेश्या के अतिरिक्त और कुछ भी स्वीकार नहीं करेगा।

देवलदेवी—कितने बार कहा कि दुनिया की बात मतकर। इस दुनिया का कौन ठिकाना।

वसंततिलका—क्षमा करें माँ श्री ! आपका दृष्टिकोण ममता के कारण एक पक्षीय हो रहा है। आप यह क्यों नहीं सोच पा रहीं कि यदि प्रतिष्ठित घरों में यह अनियमितता व्यवहृत हुई तो घर घर में यह स्थान पा लेगी। सार्वजनिक जीवन अनर्थों से भर कर घृणित हो उठेगा। और मैं अपने अंतर को भ्रम में न रख सकूँगी माँश्री ! कि इस महा अनर्थ की जड़ में मेरी लालसा, मेरी घिनौनी दुर्दमनीय वासना ही प्रमुख रूप से कार्य कर रही है। (अत्यंत दुखित हो) नहीं माँजी ! बहुत पाप कर चुकी हूँ। अब पश्चात्ताप भी कर लेने दें, ताकि कुछ हल्की हो सकूँ।

देवलदेवी—तेरा तर्क अनौखा है वसंत ! तू जीती मैं हार गई। फिर भी एक बार पुनः विचार कर ले। क्वचित तेरा ही तर्क तुझे मिथ्या प्रतिभासित हो।

वसंततिलका—पुनर्विचार की समस्या नहीं है मातेश्वरी ! पूर्णरूपेण सत्य कैसे झुठलाया जा सकता है। यह समाज का

१२०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानविन्दु है। इसे उलंघन करने की मानव में सामर्थ्य नहीं। सांसारिक जीवन में लोक व्यवहार के बिना कार्य नहीं चल सकता। यदि मनुष्य की आँखों से लोक लाज का आवरण हट जाये तो वह अत्यंत निर्लज्ज हो जायगा। यदि सामाजिक वंधन न रहें तो मनुष्य स्वच्छंद प्रवृत्ति में रत हो उच्छृंखल बन जायगा। अन्याय अत्याचार प्रतिवंधित न हो सकेंगे। समाज विश्रृंखलित हो जायगा। एक भयानक अराजकता फैल जायगी माँश्री!

देवलदेवी—यथार्थ कह रही है वसंत! (लंबी आहभर) तेरा ही कथन सुसंगत है। जैसी तेरी इच्छा हो बेटी! वैसा कर। अब मैं क्या कहूँ। (धीरे धीरे प्रस्थान)

वसंततिलका—एक अंतिम निवेदन है मांश्री! (देवल-देवी रुक जाती हैं) कृपया आज से मेरा नाम सर्वथा विस्मृत कर दें; ताकि आर्यपुत्र को तनिक भी भान न हो पाये।

देवलदेवी—ऐसा ही होगा बेटी! ऐसा ही होगा। मुझे भी तुझसे एक शिक्षा मिली है वसंत! मैं वृद्ध हो गई, पर आत्मकल्याण की रुचि अब तक भी जागृत नहीं हो पाई। इस तरुण वय में तेरी दृढ़तर विचार शक्ति ने मुझे झकझोर दिया है। सचमुच मुझ वृद्धा को गृहस्थी से क्या प्रयोजन? मैं भी गृहजाल से निवृत्त हो स्वस्थचित्त से एकाग्रता पूर्वक अपना कल्याण करूँ। अन्यथा मोह की कीचड़ में धँसती ही जाऊँगी। कौन जाने मृत्यु कब अनजाने आ गला दबोच ले, इसके पहिले ही सावधानी श्रेयस्कर है। चारु भी आ गया। सचमुच आज का मंगल दिवस है।

मित्रवती—यह आप क्या कह रही हैं मातुश्री!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवलदेवी—उचित ही कह रही हूँ मित्रा!

मित्रवती—मैं तो तुम दोनों की बातें सुन सुनकर हत-बुद्धि हो रही हूँ। मैं क्या करूँ ?

देवलदेवी—तुम अपना कर्त्तव्य भली भाँति समझती हो पुत्री ! मैं तुमसे निश्चिंत हूँ।

मित्रवती—परन्तु आपका यह आकस्मिक निर्णय मुझे विकल बना रहा है।

देवलदेवी—(समझाते हुये) अच्छा, अच्छा संप्रति मेरा कथन भूल जाओ।

मित्रवती—भूल कैसे जाऊँ ?

देवलदेवी—(ऊपरी मन से) अच्छा तो मैं अपना निर्णय अभी स्थगित कर पुनर्विचार करूँगी। अब तो प्रसन्न हो ?

मित्रवती—आश्वस्त हुई माँश्री !

(देवलदेवी का प्रस्थान)

वसंततिलका—जीजी ! मेरी इस अवज्ञा और अवहेलना को हृदय से बाहर निकाल फेंकना। परंतु अपनी इस अकिंचना अबोध अनुजा को मन से उतारने का कदापि प्रयत्न न करना; ताकि तुम्हारी स्नेह ज्योति के आलोक में निरंतर मैं अपना पथ प्रशस्त कर सकूँ। एवं भूलकर भी आर्यपुत्र को मेरा आभास न होने दें, इसी में हमारा तुम्हारा और आर्यपुत्र का कल्याण और मंगल है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रवती—(गले लगाकर) वसंत ! तेरी महानता के समक्ष मैं व मेरी बातें सभी अत्यंत क्षुद्रातिक्षुद्र नगण्य हो गई हैं। सुहागिन नारी स्वेच्छा से किसी अन्य नारी के सुख हेतु अपने सुहाग को अर्पित कर दे इससे बड़ा त्याग एवं संयम और क्या हो सकता है ?

वसंततिलका—इतनी निस्वार्थी नहीं हूँ जीजी ! मुझे पराया न समझो। तुम मेरे लिये कोई अन्य नहीं, अपनी ही बस मेरी ही हो, मैं केवल यही जानती हूँ। अपनों के लिये सब कुछ करणीय है, इसमें महानता नहीं।

मित्रवती—(हर्षाश्रु छलछला उठते हैं). सब जानती हूँ भगिनी ! तेरी उदारता के सम्मुख मैं परास्त हो गई और अपनी स्वार्थवृत्ति के कारण लज्जित।

वसंततिलका—इन व्यर्थ की बातों में न उलझो जीजी ! उनके आने के क्षण निकट आ रहे हैं। मेरी बातें आँचल में बाँध लेना। भूल जाओ कि मुझसे तुम्हारा कोई परिचय भी है। जाओ जीजी ! उनके स्वागत के लिये प्रस्तुत हो जाओ। जाओ..........

(मित्रवती का प्रस्थान)

तृतीय दृश्य

समय रात्रि प्रथम प्रहर

श्रेष्ठी भानुदत्त का प्रासाद (शयन कक्ष)

मित्रवती वसंततिलका शयन कक्ष में हैं। यही शयनकक्ष आज विशेष ढंग से सजाया गया है। चारों भित्तियों पर दीपाधारों में दीप स्थित हैं। एक ओर सुन्दर वस्त्रों से आवेष्टित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तल्प बिछा हुआ है। उस पर वेला, गुलाब आदि विविध सुमनों की पंखुरियाँ पड़ी महक रही हैं। धूपदानी से मंद मंद कालागरु चंदन का धूम्र उड़ उड़ कर कक्ष को सुवासित कर रहा है। वसंततिलका मित्रवती का शृंगार कर रही है। उसने वेणी गूँथी। उसे फूलों से सजाया। कपोलों पर लोध्रचूर्ण मला आलक्तक से पैरों में रंग दिया। माथे पर शीशफूल लगाया। हीरों से जगमगाती बिंदिया बाँधी। अन्य अंगों में यथावत आभूषण पहिनाये। बीच बीच में वह धूपदानी में धूप डाल आती है एवं मंद पड़ती वर्त्तिकायें उठा देती है जिससे प्रकाश तेज हो जाता है।

वसंततिलका—(वेणी गूँथते हुये) जीजी ! आज तुम्हारा मुख चंद्र को भी लजा रहा है। देखो न, बेचारा लज्जा से बार बार मेघों की ओट चला जाता है और वहीं से झाँक झाँक कर तुम्हें देख रहा है।

मित्रवती—मुझे तू बार बार लज्जित न कर भगिनी ! तुझसे शृंगार कराकर आज मुझे अच्छा नहीं लग रहा।

वसंततिलका—क्यों, अच्छा क्यों नहीं लग रहा ? मन छोटा न करो जीजी ! तुम अपने जीवन में सुख सुहाग भरी रात्रि के मधुमय आनंद से अभी तक वंचित रह आज प्रथम बार ही तो उसका उपभोग करोगी। ऐसे राग रंग में यह उदासी भली प्रतीत नहीं होती।

मित्रवती—कौन जाने वसंत ! मेरे मानस को जैसे कोई कुछ कोंच रहा है। तुझसे मैं बड़ी होकर भी आज क्या करने जा रही हूँ। मैं स्वार्थी हूँ सखि ! अत्यंत स्वार्थी हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंततिलका—तुम तो जीजी ! अनोखी सी बात करती हो। इसमें तुम्हारा कौन सा स्वार्थ आ गया ? पति पत्नी के भी कुछ आवश्यक करणीय कर्त्तव्य हैं, क्या उन्हें न निबाहोगी ?

मित्रवती—सो तो हैं; पर तू जो मेरी सहयोगिनी न रह कर न्यारी हो रही है। यह मुझसे सहा नहीं जा रहा।

वसंततिलका—प्रत्येक के कार्य भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं जीजी ! तुम स्नेहवश कर्त्तव्य का उलंघन करो, यह मैं भी तो नहीं सह सकती। (बिंदिया बाँधती है)

मित्रवती—सब समझ रही हूँ सखि ! बड़ी श्रृंगार कर रंगरेलियाँ मनाये और छोटी उदास विरागिनी बन सादगी से जीवन व्यतीत करे। यह क्या बड़ों को शोभा देता है ?

वसंततिलका—जीजी ! अपने-अपने नियत स्थानों पर सभी वस्तुयें सुशोभित होती हैं। अनुचित स्थान पर वे उपहास की पात्र हो जाती हैं।

मित्रवती—जानती हूँ, किस विवशता में तू ये दर्शन-शास्त्र बखान रही है। तेरे लिये क्यों ये स्थान उपयुक्त नहीं है ? तनिक सुनूँ तो, क्या नहीं है तुझमें ?

वसंततिलका—(हँसकर)

चंपा तुझमें तीन गुण, रूप रंग और बास।
अवगुण तुझमें एक है, भँवर न आवे पास॥

सब कुछ होते हुये भी चंपा भँवर को आकर्षित नहीं कर पाता जीजी !

मित्रवती—तो इसमें भ्रमर ही अपराधी है चंपा का क्या दोष ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंततिलका—भले ही कोई दोषी हो, परन्तु दोनों का मिलन तो असंभव है। छोड़ो जीजी ! इन बातों को, रस में विष न घोलो। (कपोलों पर लोध्र चूर्ण मलती हैं)

मित्रवती—ना ना यह सब मैं नहीं लगा सकूँगी।

वसंततिलका—(स्नेह पूर्ण स्वर में) मेरी बड़ी अच्छी जीजी ! आज भर मुझे अपने मन की कर लेने दो। फिर न कहूँगी, कभी भी न कहूँगी। तुम्हें मेरी सौगंध है जीजी !

मित्रवती—यह तुम मुझ पर अन्याय कर रही हो बहिन !

वसंततिलका—अन्याय ही सही। अपनी लघु अबोध अनुजा का क्या तनिक अन्याय सहन नहीं कर सकोगी ? मेरी प्रसन्नता के निमित्त तो तुम्हें कष्ट भुगतना ही होगा। जीजी !

मित्रवती—तेरी प्रसन्नता अत्यधिक मूल्यवान है वसंत ! इसे क्रय करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है।

वसंततिलका—(आलक्तक लगाते हुये) इसकी तुम चिन्ता न करो। सब मुझ पर छोड़ दो।

मित्रवती—सुन वसंत ! एक बात कहूँ ? आ अब मैं तेरा शृंगार कर दूँ। जब आर्यपुत्र शयन कक्ष में प्रवेश करेंगे; तब मैं तुझे ही सर्व प्रथम प्रस्तुत कर अनायास ही उन्हें आश्चर्य चकित कर दूँगी। (अपने आभूषण उतार कर पहिनाने का उपक्रम करती है)।

वसंततिलका—(हाथ पकड़कर रोकते हुये) यह क्या जीजी ! मंगल सूत्र मत उतारो। इसके पहिनने का अधिकार मुझे नहीं है। जो उचित नहीं, वह शोभास्पद भी नहीं हो सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रवती—अब मैं तेरी कुछ न सुनूँगी। मुझे भी अपने मन की कर लेने दे।

वसंततिलका—ऐसी भूल न करना जीजी! मन की करना ही तो आपत्तिजनक है। मन की सेवा की तो समझो नित नई विपत्तियाँ बिना निमंत्रण के आ गई।

मित्रवती—तू अपने मन की कर रही है सो? मेरे लिये दर्शनशास्त्र लेकर बैठ जाती है, अपने लिये नहीं।

वसंततिलका—'काहू को बैंगन बायले, काहू को पथ्य बराबर'। फिर भी मैं मन की ही नहीं कर रही। मन पर नियंत्रण रख उचित कर्त्तव्य कर रही हूँ। मन तो ऐसा छलिया है कि कहीं भी ले जाकर पटक देगा।

मित्रवती—तू आज मुझे बहुत बड़ी लग रही है बहिन! तेरी महानता देखकर मैं स्वयँ पर लज्जित हूँ। बस चरण रज लेने को जी चाहता है। (झुकती है)

वसंततिलका—ना जीजी! ये क्या अनर्थ कर रही हो?

मित्रवती—अनर्थ नहीं सखि! तेरे उज्जवल महान त्याग ने मुझे विवश कर दिया है पदरज लेने को। तू आदर्श रमणी है, सतियों में महासती। होगी कोई ऐसी उदार सहिष्णु कुलीन नारी!

वसंततिलका—भावुकता में न बहो जीजी! उद्वेग न आ जाय कि कहीं ऐसी सुनहली तारों भरी निशा किरकिरी हो जावे। अच्छा जीजी! मुझे आज्ञा दो। रात गहरा रही है। आर्यपुत्र आया ही चाहते हैं।

मित्रवती—बैठ तो, अभी से मुझे अकेले अच्छा नहीं लगेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंततिलका—(रूठते हुये) मुझे नींद आ रही है।

मित्रवती—झूठी कहीं की। मुझसे ही छल? देखूँ तनिक आँखें, कहाँ है निद्रा?

वसंततिलका—लो देखो न, मेरी आँखे अलसाई सी नहीं लगती। पलकें गिरी जा रही हैं। आर्यपुत्र आ जायँगे तो मेरा स्वर्ग सा घर नष्ट हो जायगा। मुझे शीघ्रातिशीघ्र जाना ही उचित है।

मित्रवती—ओह! मुझे अच्छी सुधि आ गई। तू बैठ मैं अभी आई। (जाते जाते) जाना नहीं वसंततिलका। हाँ........

(एक ओर से मित्रवती का प्रस्थान। दूसरी ओर से चारुदत्त का प्रवेश। वसंततिलका मित्रवती का मार्ग देखती रहती है, वह चारुदत्त को नहीं देख पाती। चारुदत्त वसंततिलका का नाम सुनकर चौंक पड़ते हैं। पुरातन सुधियाँ उनके स्मृति पटल पर तैरने लगतीं हैं। किसी के आगमन की आहट पा वह पीछे मुड़कर देखती है और मुख छिपाने हेतु ताकि पहिचान में न आ सके साटिका से अवगुंठन कर जाने लगती है। पर चारुदत्त उसे पहिचान लेते हैं।

चारुदत्त—(हर्ष से आश्चर्यान्वित हो) देवी वसंततिलका! मुख पर यह आवरण कैसा? हमने पहिचानने में भूल नहीं की है। व्यर्थ छुपने की चेष्टा मत करो।

वसंततिलका—(सारंग की ओट से ठिठककर) मुझे दुविधा में न डालें देव! जाने का मार्ग दें। मैं वसंततिलका नहीं हूँ। आर्या मित्रवती आपकी बाट जोहती रही हैं। आती ही होंगी। उन्हें उपकृत करें देव!

चारुदत्त—तुम वसंततिलका नहीं हो?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंततिलका—(दृढ़ता पूर्वक) नहीं।

चारुदत्त—तुम्हारा नाम ?

वसंततिलका—देव ! मुझे वासंती कहते हैं।

चारुदत्त—ओफ ! वासंती ! बड़ा सुन्दर नाम है; किन्तु हमें वसंततिलका और वासंती में कोई अंतर नहीं जान पड़ता देवी ! अभी-अभी देवी मित्रवती तो वसंततिलका ही कह रही थीं।

वसंततिलका—(हिचकते हुये) हाँ, वे वसंततिलका भी कह देती हैं। मैं दासी हूँ। सेवा में नई-नई ही आई हूँ।

चारुदत्त—किन्तु यह मुख पर आवरण रखना कौन से देश की रीति है ? अभी तक हमारी दृष्टि में ऐसा कोई देश नहीं आया। स्यात् तुम बहुत दूर देश से आई हो; जिसका हम नाम भी नहीं जानते। (वसंततिलका मौन है। मित्रवती का प्रवेश)

मित्रवती—(मुस्कुराते हुये) धन्य भाग्य, आर्यपुत्र आ गये। विराजें देव ! (वसंततिलका की ओर देखकर) अरी, यह क्या वसंततिलका ! (हँसते हुये मुख पर का आँचल हटाते हुये) ये कौन सा स्वाँग धारण कर रखा है तूने ?

(वसंततिलका—आँचल को जोर से पकड़कर होठों पर उंगली रखकर मौन रहने का संकेत करती है)।

मित्रवती—अब मौन कैसे रह सकती हूँ; जबकि आर्य-पुत्र जान चुके हैं, तब उन्हें भ्रम में रखना असंभव है। आर्य-पुत्र ! ये रही आपकी प्रेयसी वसंततिलका। आशा है आप भूले न होंगे। बैठो बहिन ! तुम भी बैठ जाओ। (आवरण हटा देती है)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारुदत्त—सच वसंततिलका! परन्तु इन्होंने वासंती नामक दासी के रूप में ही अपना परिचय दिया है।

मित्रवती—(आश्चर्य से प्रश्नात्मक स्वर में) हाँ, अच्छा!

वसंततिलका—मुझे न छेड़ो जीजी!

चारुदत्त—मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा। मुझे बताओ शुभे! ये सब कैसी प्रहेलिका है। ये यहाँ कैसे आईं? तुम दोनों में मुझे घनिष्ठ स्नेह जान पड़ रहा है। कैसे तुम दोनों में परिचय हुआ? सभी उत्कंठायें जाग गई हैं। इनका समाधान करो भद्रे!

वसंततिलका—आज नहीं कल इसका समाधान हो जायगा देव! आज आप यात्रा के थके हुये हैं। विश्राम करें।

चारुदत्त—विश्राम! नहीं, बोझिल मन में विश्राम कहाँ? तुम्हें देखकर जो शंकायें उठ खड़ी हुई हैं, उनका समाधान हुये बिना कैसे शांति मिल सकेगी? देखो न, अलस पलकों से निद्रा रूठकर उड़ गई है।

(वसंततिलका जाने लगती है)

मित्रवती—तुम बैठो वसंत! जा कहाँ रही हो। अब तो प्रकट होकर तुम्हारा आर्यश्रेष्ठि से साक्षात्कार भी हो गया। प्रच्छन्नता की बात समाप्त हो गई। अब जो होना होगा सो होगा।

वसंततिलका—कुछ भी हो जीजी! मैं आप दोनों के मध्य न आ सकूँगी। यदि आपने बलात् घसीटने का प्रयत्न किया तो फिर गृह सम्मान की रक्षार्थ मुझे अपने जीवन का उत्सर्ग करने में तनिक भी हिचक नहीं होगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(मित्रवती उसे पुनः बैठा लेती है)

चारुदत्त—अपना तात्पर्य स्पष्ट करो देवी! तुम्हारे मनोगत भावों से हम परिचित होलें।

मित्रवती—आप ही निर्णय करें आर्यपुत्र! विस्तार से समय नष्ट न कर संक्षेप में ही इस घटना से अवगत करा दूँ। एक दिन संध्याकाल में इसे हमने अपने द्वार पर मूर्च्छितावस्था में पाया। ज्ञात हुआ कि यह वसंततिलका है और आपके वियोग में उस नारकीय जीवन की कल्पना से घबराकर चुपचाप गृहत्याग कर आश्रय हेतु चली आई है। बहुत तर्क वितर्क के पश्चात् हमने इसे अपने पारिवारिक जीवन में प्रश्रय दिया। तब से आज तक हम दोनों सहोदरा की भाँति रह रही हैं।

चारुदत्त—आश्चर्य है भद्रे! तुम दोनों का प्रेम आदर्श है। अभी चंद क्षणों में ही हम इसका आभास पा चुके हैं। पारस्परिक ईर्ष्या की मलिन रेख भी दिखलाई नहीं पड़ती। हम इस विचार में पड़ गये हैं कि क्या यह संभव है?

वसंततिलका—क्या आपको स्वयं अपने नेत्रों पर भी विश्वास नहीं हो रहा? मेरी जीजी में औदार्य कूट कूटकर भरा है; वरन् मुझे पुनः आपके दर्शनों का सौभाग्य नहीं मिल पाता।

चारुदत्त—सत्य कह रही हो देवी! आर्या मित्रवती की महानता निस्संदेह श्रद्धा के योग्य है।

मित्रव्रती—श्रद्धास्पद बना मुझे दूर न ठेलें देव! नारीका स्थान पति के चरणों में है, माथे पर नहीं। मैं जो कुछ वसंत के प्रति कर्त्तव्य निभा पाई हूँ वह अपने अनुभव के कारण ही।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं निरंतर बारह वर्ष पति-विरह की ज्वाला में जली हूँ। मैं नहीं चाहती कि मेरा निमित्त पाकर मेरी जैसी ही नारी पति की अर्द्धांगिनी होकर दारुण दुःख भोगने हेतु विवश हो।

वसंततिलका—किन्तु जीजी सभी व्यक्तियों को कष्ट के कष्ट प्रद होने का अनुभव होता है। पर अनुभूति होते हुये भी दूसरों के प्रति विशेषकर सपत्नी के प्रति ऐसा सारल्य तुम जैसी विरली नारी ही रख पाती हैं।

चारुदत्त—देवी वसंततिलका का कथन अक्षरशः सत्य है। अविवाहिता सपत्नी के प्रति ऐसा मृदु व्यवहार अभी तक देखने सुनने में नहीं आया।

मित्रवती—आपका वसंत के त्याग की ओर तो ध्यान गया ही नहीं। आपके आगमन पर अचानक इसने दूसरा ही रूप धारण कर लिया। कहती है कि प्रच्छन्न रूप से दासी की भाँति निवास करूँगी। क्या यह उचित है?

चारुदत्त—देवी वसंततिलका! ऐसा निर्णय करने का कारण क्या है?

वसंततिलका—आर्यश्रेष्ठि! आपने ही मुझे विवेक दिया जिससे मेरी बुद्धि ने विचार करने की क्षमता पाई और आज आप जैसे विवेकवान इस 'क्यों' को उठायें तो अत्यंत आश्चर्य होता है। क्या लोक हमारे संबंध को स्वीकार करेगा?

चारुदत्त—निश्चय ही नहीं करेगा परंतु हम करायेंगे। हम तुम्हारी उज्जवलता की साक्षी देंगे।

१६२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंततिलका—यह असम्भव है देव ! आपकी साक्षी नहीं मानी जायगी। बारह वर्ष की घनिष्ठता से प्रमाणित है कि मैं और आप दोनों एक ही साँचे में ढले हुये हैं। चोर की साक्षी दूसरा चोर दे तो सफलता तो दूर वह हास्यास्पद ही बनकर रह जायगा।

चारुदत्त—एक बात और है देवी ! जबकि देवी मित्रवती तुम्हें अपना चुकी हैं; तब आंतरिक बाधाओं से हम निर्भय हैं। रही लोक की बात। सो यदि समाज हमें मानने को प्रस्तुत नहीं तो हम भी लोक मान्यता को त्याग देंगे।

वसंततिलका—लोक मान्यता क्या त्यागेंगे ? मुझे ग्रहण करना या लोक मान्यता त्यागना दोनों दो नहीं, एक ही बात है।

चारुदत्त—चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। हम और हमारा घर। बस लघु परिवार ही हमारा सब कुछ होगा।

वसंततिलका—समाज का त्याग करना हँसी खेल नहीं आर्यपुत्र ! ये माटी के घरौंदे नहीं कि मनचाहे बनायें और मिटा डालें। इससे समस्या का समाधान नहीं होगा। समस्या ज्यों की त्यों ही नहीं रहेगी; अपितु उलझती भी जायगी। क्या आप बतला सकते हैं कि आप अपनी संतान के विवाह सम्बन्ध किस प्रकार करेंगे ? उनके प्रति किये गये लांछन, अपशब्द क्या आपको प्रियकर हो सकेंगे ? (चारुदत्त मौन हैं) निश्चय ही नहीं। निरुत्तर हो गये आर्यश्रेष्ठि ! आपका मौन इसका सूचक है। आप ही क्या, इसका उत्तर मनीषियों के पास भी नहीं है। प्रलय काल तक इसका उत्तर अप्राप्य ही रहेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारुदत्त—देवी वसन्ततिलका ! रुको···

वसंततिलका—मेरी वाणी रोक देना समस्या का हल नहीं है। यह समस्या जटिल है और सदैव ही जटिल बनी रहेगी। इस विषय में तर्क कुतर्क बनकर रह जायगा। जो अनुचित है। इससे अनेक दुराचार फैलने की संभावनायें हैं, जो विघातक होंगी। हम सामाजिक प्राणी हैं। समाज के हित में योगदान श्रेयस्कर है। हमें समाज के मानबिन्दु की रक्षा करनी होगी। अस्तु आत्म नियन्त्रण कर समाज को घुन लगने से रोकें। अब हमारी वार्त्ता यहीं समाप्त हो। मुझे जाने की आज्ञा दें देव ! एवं भविष्य में कभी दर्शन देने का कष्ट न करें। आज से वसंततिलका का अस्तित्व समाप्त हुआ। भूलें दोहराना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता।

चारुदत्त—इतनी कठोर न बनो देवी !

मित्रवती—आर्यपुत्र ही नहीं, मैं भी तुम्हारी यह अवस्था नहीं देख सकूँगी। एक बार पुनः विचार करो।

वसंततिलका—जीजी ! मैं तुमसे दूर कहाँ हूँ। (चरण छूकर) मेरी धृष्टता क्षमाकर अपने वात्सल्य की पवित्र छाया मुझपर छाये रहना; ताकि मेरा जीवन शान्ति से निकल जाये। (चारुदत्त से) नमस्कार देव ! आप से भी यही पुनः निवेदन है कि समझें संसारपट से वसंततिलका सदा के लिये लुप्त हो चुकी है। मैं प्रभु से आप युगल दंपत्ति के भविष्य की मंगल कामना सदैव करती रहूँगी। अच्छा, अब विदा ! (वसंततिलका का प्रस्थान। वह द्वार पर पहुँचती है कि)—

मित्रवती—रुको भगिनी !

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंततिलका—(रुककर) आज्ञा जीजी।

मित्रवती—एक मार्ग और है वसंत !

वसंततिलका—(मुस्कुराकर) अब और अधिक मोह में पड़ विकल्प न करें जीजी। जीवन-तरणी को वहाव के मार्ग पर सरलगति से बहने दें। हस्तक्षेप कर उसकी गति वक्र बनाने का असफल प्रयास न करें। वह दुख:पूर्ण ही होगा।

मित्रवती—मेरे मन ने सरल से सरल पथ का इसी क्षण अन्वेषण कर लिया है सखि ! आओ सुनो, तुम्हें भी आपत्ति न होगी।

वसंततिलका—(बैठकर) अवश्य सुनूँगी जीजी ! तुमने तत्क्षण मार्ग खोजा है तो जानने की जिज्ञासा स्वाभाविकतः प्रवल होगी ही। सचमुच आपकी विचार शक्ति प्रशंसनीय है।

मित्रवती—ज्ञात होने पर तुम उपहास न कर सकोगी। सुनो, यदि हम तीनों मिलकर सांसारिक सामग्री का उपभोग कर भोग का आनंद नहीं ले सकते तो आध्यात्मिक विचार धारा का अवलंबन ले योग धारण कर श्रमण पथ के एक साथ पथिक तो बन सकते हैं। इससे किसी को कोई बाधा भी न होगी। देश, काल धर्म के विपरीत भी हम नहीं जायँगे।

वसंततिलका—मार्ग तो सचमुच ही सुन्दर है जीजी ! इस अनोखी तात्कालिक सूझ-बूझ के लिये तुम धन्यवाद की पात्र हो। सुखद शुभ सम्मति कल्याणकारी एवं मेरे हित में है। आप दोनों अभी गृहधर्म सेवन करें और मैं योग पथ पर चलकर आत्महित करूँगी। इस प्रकार सब सानंद अपने अपने कार्य में रत हो सकेंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारुदत्त—खूब विचार कर लो शुभे ! श्रमण पथ असि-धाराव्रत के सदृश है। इस वय में असाध्य नहीं तो दुस्साध्य अवश्य है।

मित्रवती—पर मैं अकेली वसंत को योगिनी नहीं बनाना चाहती। मैं स्वयँ भी उसी पथ का अनुसरण करूँगी।

चारुदत्त—और हम ?

मित्रवती—आपकी जो इच्छा हो, करें। स्वतन्त्र हैं आप। आप घर में रहें। हम अपना अभ्यास प्रारंभ कर सफलता की ओर अग्रसर हों।

चारुदत्त—यह कैसे हो सकता है। तुम दोनों आगे और हम पीछे। पीछे रहना हमें तनिक भी रुचिकर नहीं है देवियो ! क्यों न हम भी आत्मसाक्षात्कार कर चिर शान्ति पाने का प्रयास करें।

वसंततिलका—नहीं, नहीं मैं यह न चाहूँगी कि कि मुझ अकिंचना के कारण संपूर्ण घर ही समाप्त हो जाये। मैं आप दोनों से साग्रह निवेदन करूँगी कि मुझे अकेले ही श्रमण पथ पर जाने की अनुमति प्रदान करें। धर्म संकट में न डालें।

मित्रवती—मैं भी यही आग्रह आर्यपुत्र से करूँगी।

चारुदत्त—'सुनना सबकी करना मन की' हम भी स्वतंत्र हैं। देवी मित्रवती का सुझाव मंगलमय है। अस्तु हम तीनों उसी योग पंथ के पथिक बनेंगे। जहाँ कोई ऊँच नीच नहीं, छोटा बड़ा नहीं, कोई विघ्न बाधा नहीं। जिस पर चलकर सभी अपना कल्याण कर सकते हैं। जहाँ प्रत्येक आत्मा का प्रजातंत्र राज्य है। जहाँ प्रत्येक मानव सर्वोदय के पात्र हों, वही उन्मुक्त

१२,२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मार्ग प्रशस्त है। जिसे अपना कल्याण करना हो, जो नीच ऊँच के भेद को मिटाना चाहता हो वह आये और इस मार्ग पर चलकर भव भव की भटकन को समाप्त कर परमात्म-स्वरूप बनें।

वसंततिलका—इस प्रकार हम लोक-हृदय परिवर्त्तन कर सकने में भी समर्थ होंगे।

मित्रवती—चलें, फिर अपना मुक्ति अभियान प्रारंभ हो।

वसंततिलका—जीजी ! सचमुच ही तुम्हारा त्याग, तुम्हारी विरक्ति अभूतपूर्व है।

चारुदत्त—देवी मित्रवती ! यह ज्वलंत सत्य है।

मित्रवती—परंतु इन प्रशंसात्मक शब्दों की परिधि से हम सब बाहर निकल आये हैं। अरुणोदय के साथ ही हम अपने पथ पर चल पड़ेंगे।

(पटाक्षेप)

समाप्त

१४८०
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१६८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi